मनुस्मृति एवं याज्ञवल्क्य स्मृति में चिन्तन के विविध धरातल

डॉ0 ममता,
प्रवक्ता–संस्कृति विभाग,
लक्ष्मी देवी राजेन्द्र सिंह यादव महाविद्यालय,
उसरगाँव, कालपी (जालौन,उ0प्र0)

वेद भारतीय संस्कृति के आधारभूति सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ हैं। यह वह सुधा–सरोवर हैं,जहाँ से नाना प्रकार के शास्त्र,साहित्य व कलाओं की कुल्याएं प्रवाहित होती हैं। सामान्यतः वेद का अर्थ ज्ञान होता है। ''वेद शब्द विद् धातु (विद ज्ञाने) से घञ् (अ) प्रत्यय करने पर बनता है। इसका अर्थ है ज्ञान। अतएव वेद शब्द का अर्थ है–ज्ञान की राशि या ज्ञान का संग्रह–ग्रन्थ।''[1] प्राचीन ऋषियों ने जो ज्ञान अर्जित किया था, उसका संग्रह वेदों में है।

(1) वेद महात्म्य–वेद और विद्या दोनों शब्द विद् धातु से बने हैं और वेद शब्द का प्राचीन साहित्य में विद्या अर्थ में प्रयोग भी हुआ है, अतः प्राचीन समस्त विद्याओं को वेद (ज्ञान) शब्द के अन्तर्गत लिया जाता था। वैसे तो इतिहास,भूगोल आदि विषय ज्ञान ही हैं । परन्तु वेद शब्द से हमें वह ज्ञान भी अभीष्ट है । जिसे हिन्दू धर्म की परम्परा के अनुसार सर्वप्रथम ऋषि व महर्षियों ने प्राप्त किया है। अतः तपभूतः ऋषियों के द्वारा इष्ट ज्ञान ही वेद शब्द का अभिमत है। जैसा कि महाभारत के वन पर्व में व्यास जी का कथन है– **युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान्ऐतिहासान्महर्षः। लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञात्वा स्वयंभुवा ।।**

इसी आधार पर आयुर्वेद, धनुर्वेद आदि उपवेद माने जाते है। सायण ने वेद शब्द की दूसरी व्याख्या भी की हैः–

''इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थों वेदयति स वेदः।'' [2]

अर्थात जो ग्रन्थ इष्ट–प्राप्ति और अनिष्ट–निवारण का अलौकिक उपाय बताता है, उसे वेद कहते है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि अच्छा क्या है और बुरा क्या है? यह वेद ही बताता है **–'ऋषिमन्त्रद्रष्ठा.....ऋषेज्ञानार्थत्वाद् मन्त्रंदृष्टबल ऋषयः'**[3] **,'ऋषिदर्शनात,मन्त्रान् ददर्श इत्यौपमन्यवः'** [4]

परन्तु व्यापक वाङ्मय के अर्थ में प्रयुक्त होने के कारण,इस शब्द की व्युत्पत्तियां अनेक धातुओं से अनेक प्रकार से हो सकती हैं । अपने श्रग्वेदभाष्य की भूमिका में स्वामी दयानन्द ने वेद शब्द की चार प्रकार से व्युत्पत्ति दिखलाई है – **विदन्ति जानन्ति,विद्यन्ते भवन्ति, विदन्ति** अथवा **विदन्ते लभन्ते, विदन्ति विचारयन्ति सर्वे मनुष्या : सत्यविद्यां यैर्येषु वा तथा विद्वांसश्च भवन्ति,ते वेदा :'**

अर्थात जिनसे सभी मनुष्य सत्यविद्या को जानते हैं प्राप्त करते हैं अथवा विद्वान होते हैं या सत्य विद्या की प्राप्ति के लिए जिनमें प्रवृत्त होते हैं ,वे वेद हैं ।

श्रुति, निगम– वेदों को ''श्रुति भी कहते हैं।''[5] इसका कारण यह है कि इन्हें गुरू–शिष्य–परम्परा से ही सुरक्षित रखा गया था। गुरू परम्परागत पद्धति से वेदों के मन्त्रों को शिष्यों को पढ़ाते थे और शिष्य उनको श्रवण–मात्र से स्मरण करते थे। इसमें इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाता था कि शिष्य मन्त्रों के स्मरण में स्वर और उच्चारण–सम्बन्धी एक भी त्रुटि न होने दें। वेदों को 'निगम' भी कहते है। 'निगम' का अर्थ है– अर्थबोधक या सार्थक। वेदों को

साभिप्राय, सुसंगत और उत्तम अर्थ बताने के कारण 'निगम' कहा जाता था।

वेदों का महत्व–शब्द प्रमाण की दृष्टि से वेद आप्त वचन हैं। वेदों में प्रतिपादित धर्म और ज्ञान शब्द प्रमाण हैं। प्रत्यक्ष और अनुमान से जिन बातों का ज्ञान नहीं हो सकता है, जैसे– धर्म–अधर्म, पाप–पुण्य, मोक्ष, आत्मा का स्वरूप, पुनर्जन्म आदि, उनका बोध वेदों से ही होता है। कहा गया है–

''प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एनं विदन्ति वेदेन, तस्माद् वेदस्य वेदता।।''[6]

धार्मिक महत्व– वेद आर्य धर्म की आधार शिला है। धर्म के मूल–तत्वों को जानने के एकमात्रा साधन वेद हैं।

''वेदोऽखिलो धर्ममूलम् ।''[7]

मनु ने वेदों को धर्म का मूल बताया है। मनु वेदों को सर्वज्ञानमय और सब विद्याओं का स्त्रोत मानते हैं तथा मानव मात्र के कर्तव्य–ज्ञान के लिए वेदों को आधार बताते हैं।

''यः कश्चित् कस्यचिद् धर्मो मनुना परिकीर्तितः।
स सर्वोऽभिहितो वेदे, सर्वज्ञानमयो हि सः।।''[8]

समस्त भारतीय वाङ्मय वेदों का प्रमाण मानता है। सभी धार्मि कार्यो में वेदों की प्रामाणिकता अकाटय मानी गई है। महर्षि पतञजलि ने निष्काम भाव से षडग वेदों का अध्ययन ब्राह्मण के लिए अनिवार्य बताया है।

''ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङो वेदोऽध्येयो
ज्ञेयश्च।''[9]

ब्रह्मणों के लिए वेदाध्ययन अत्यन्त अनिवार्य कार्य बताया गया था। वेदाध्ययन को परमतप माना गया था। यदि कोई ब्राह्मण वेदाध्ययन से विमुख होकर अन्य शास्त्रों में रूचि रखता था तो उसे जाति– बहिष्कृत करके शूद्र की कोटि में रखा जाता था।

''वेदमेव सदाऽभ्यस्येत् तपस्तप्यन् द्विजोत्तमः।
वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते।।''[10]
''योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्रं कुरूते श्रमम्।
स जीवत्रेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः।।''[11]

सांस्कृतिक महत्व– वेद भारतीय संस्कृति के मूलस्रोत हैं। भारतीय संस्कृति का वास्तविक ज्ञान वेदों एवं वैदिक साहित्य से ही प्राप्त होता है। प्राचीन काल में वस्तुओं के नामादि तथा मनुष्यों के कर्म आदि का निर्धारण वेदों से ही किया गया था।

''सर्वेषां तु स नामानि, कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ, पृथक् संस्थाश्च निर्ममे।।''[12]

लोकमान्य तिलक ने वेदों की प्रामाणिकता को मानना ही आर्यत्व एवं हिन्दुत्व का लक्षण दिया है– ''प्रमाण्यबुद्धिवेदेषु'।''[13] आर्यों का यज्ञ पर अटूट विश्वास, एक देव को मुख्य मानते हुए भी अनेक देवों की सत्ता, निष्काम कर्म की कर्तव्यता, ईश्वर की सर्वव्यापकता, ज्ञान और कर्म मार्ग का समन्वय, भौतिकवाद के प्रति घृणा या अनास्था, पुनर्जन्म में विश्वास, जीवन का लक्ष्य मोक्ष, आदि का वास्तविक ज्ञान वैदिक साहित्य से ही होता है।

शास्त्रीय महत्व– 'सर्वज्ञानमयो हि सः' वेदों को सभी विद्याओं का आधार माना जाता है। ''वेदों में दार्शनिक सिद्धान्त, राजनीति, समाजशास्त्र, अध्यात्म, मनोविज्ञान, आयुर्वेद, गणित, अर्थशास्त्र, नाटयशास्त्र, काब्यशास्त्र, कामशास्त्र, तथा विविध कलाओं का अनेक स्थानों पर वर्णन है।''[14] वेदों के अध्यात्म तथा दार्शनिक तत्वों को लेकर ही विविध उपनिषदों और दर्शनों की सृष्टि हुई। अतएव समस्त प्राचीन वाड्मय में वेदों के अध्ययन पर असाधारण बल दिया गया है।

आचार–संहिता– वेद मानवमात्र के कर्तव्य–बोध के लिए सबसे प्रामाणिक ग्रन्थ है। इनमें सभी के कर्तव्याकर्तव्यों का यथास्थान विस्तृत विवेचन और प्रतिपादन है। जैसे–गुरू–शिष्य, पति–पत्नी, पिता–पुत्र, माता–पिता, समाज और व्यक्ति, राष्ट्र और राष्ट्रीयता आदि।

सामाजिक महत्व– प्राचीन भारतीय समाज का चित्रण वैदिक साहित्य से प्राप्त होता है। मुख्यतया ऋग्वेद और अथर्ववेद से तत्कालीन समाज और सभ्यता का विशद विवरण प्राप्त होता हे। यजुर्वेद[15] में विविध जातियों के कर्मों का वर्णन है। उस समय प्रचलित वृत्तियों (पेशों) का भी उसमें विस्तृत वर्णन है। जैसे– ब्राह्मण का कर्तव्य ज्ञानार्जन, क्षत्रिय का रक्षा करना, वैश्य का धनोपार्जन एवं उसका सदुपयोग, शूद्र का सेवा–कार्य। चोरी निन्दनीय कार्य है, आदि।

''ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरूद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रं तमसे तस्करम्0''।[16]

आर्थिक महत्व– वेदों से आर्यों की अर्थ–व्यवस्था का विशद चित्रण प्राप्त होता है। प्राचीन काल में आदान–प्रदान की क्या व्यवस्था थी? व्यापार और वाणिज्य का क्या स्वरूप था? कृषि, अत्र, वस्त्रादि तथा पशु आदि का क्या एवं किस प्रकार जीवन में उपयोग था, इसका वर्णन वेदों में प्राप्त होता है। आदान–प्रदान, लेन–देन अर्थशास्त्र का मूल मन्त्र है। यजुर्वेद में इसका सुन्दर प्रतिपादन हुआ है:–

''देहि में ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे।
निहारं च हरासि में निहारं निहराणि ते।।''[17]

राजनीतिक महत्व– वेदों में प्राचीनकालीन राजनीति का वर्णन मिलता है। राष्ट्र क्या है? राजा और प्रजा के कर्तव्य, राजा का प्रजा के प्रति उत्तरदायित्व, राजा का वरण, मंत्रि–परिषद, सभा और समिति की स्थापना, प्रजातन्त्र–व्यवस्था, शत्रु–संहार, नीतियों का प्रयोग। जैसे– प्रजा का कर्तव्य था कि राष्ट्र की रक्षा करे–''वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः स्याम ।''[18]

प्रजातन्त्र राज्य–व्यवस्था ––''महते जानराज्याय0।''[19]

राजा का निर्वाचन––''विशस्त्वा सर्वा वाञ्छुन्तु0 ।'' [20] यथा ''त्वां विशो वृणतां राज्याय।'' [21]

सभा और समिति की उपयोगिता –''सभा च मां समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने0।''[22]

भाषा–वैज्ञानिक महत्व– समस्त विश्व–वाङ्मय में ऋग्वेद ही सबसे प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थ है। तुलनात्मक भाषा वैज्ञानिक सभी अध्ययनों के लिए वेदों की, मुख्यतया ऋग्वेद की, परम उपादेयता है। भाषा का क्रमिक विकास किस प्रकार होता है या किस प्रकार हुआ है, इसके यथार्थ ज्ञान के लिए वेदों की अत्यन्त उपयोगिता है। वैदिक संस्कृत से लौकिक संस्कृत का किस प्रकार विकास हुआ है, इसके लिए भी वेदों की सहायता अनिवार्य है।

ऐतिहासिक महत्व– ऐतिहासिक महत्व की कुछ सामग्री वेदों से प्राप्त होती है, जिसके आधार पर प्राचीन इतिहास की रूपरेखा तैयार की जाती है। जैसे–नदियों के नाम– इमं में गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि0[23] ,दाशराज्ञ युद्ध[24] ,दश राजानः समिता अयज्यवः0। पञ्चजनाः[25],यदुं–तुर्वश,[26] ,पशु–पक्षियों के नाम[27] ,जातियों के नाम[28] ।

काव्यशास्त्रीय एवं साहित्यिक महत्व– वेदों में अनुप्रास, यमक, रूपक आदि अलंकारों का अनेक स्थानों पर प्रयोग है। जैसे– यमक का प्रयोग– कविभिर्निर्मितां मिताम्0[29] । उषःसूक्त में उषा का एक अत्यन्त सुन्दरी युवती और पत्नी के रूप में वर्णन मिलता है। उदय होती हुई उषा एक सुन्दरी के तुल्य अपने वस्त्रों को चारों ओर फैलाती है। पृथ्वी से द्युलोक तक उसका ही सौन्दर्य दिखाई पड़ता है।

''अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी।

स्वर्जनन्ती सुभगा सुदंसा श्रान्ताद् दिवः पप्रथ आ पृथिव्याः।।''[30]

उषा को एक सुन्दरी कन्या का रूप देते हुए सूर्यरूपी पति से मिलने के लिए उद्यत प्रेमिका के रूप में वर्णन किया गया है कि वह मुस्कराती हुई और अपने वक्षःस्थल को आनावृत करती हुई सूर्य के सम्मुख जाती है।

कन्येव तन्वा शाशदानां एषि देवि देवमियक्षमाणम्।

संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादविर्विक्षांसि कृणुते विभाति।।[31]

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि वेदों का अनेक दृष्टि से असाधारण महत्व है।

विद्यां चाविद्यां च यस्तद् वेदोभयँ, सह।

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।। [32]

(16) उपनिषदों में कर्मकाण्ड को ब्रह्मविद्या की अपेक्षा बहुत हीन माना गया है। यज्ञ एवं कर्मकांड को मुण्डक उपनिषद् में निकृष्ट साधन एवं पुनर्जन्म का कारण बताया है।

प्लवा ह्येते श्रदृढा यज्ञरूपा . . .

जरामृत्युं ते पुनरेवापियन्ति।।[33]

लुडविग स्टाइन (Ludwig Steim)ने जिस एकत्ववाद को विश्व की समस्याओं के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण माना है, वह दार्शनिक विचार, विन्टरनित्स के अनुसार, भारतीय उपनिषदों में 3 हजार वर्ष पहले ही प्रतिपादित हो चुका था।''[34]

विन्टरनित्स ने उपनिषदों के महत्व के विषय में जर्मन दार्शनिक शोपेनहावर (Schopenhauer) के उद्गार विस्तृत रूप में उद्घृत किए है। जिसमें उसने कहा है कि– उपनिषद् मेरे जीवन में शान्ति के साधन रहे है और मृत्यु में भी शान्ति के साधन रहेंगे।

'It has been the solace of my life and will be the solace of my death.'[35]

वेदांग

वेद स्वयं एक गहन विषय हैं, अतः उसके उचित ज्ञान के लिए वेदांगों की आवश्यकता होती है । अंग शब्द का अर्थ उपकारक है अर्थात वेदांग वेदमन्त्रों के अर्थज्ञान तथा उनके विनियोग में उपकारक है। अर्थ की दृष्टि से वेदांग का अर्थ है– वेदस्य अङानि, वेद के अंग। अंग का अर्थ है– अङ्ग्यन्ते ज्ञायन्ते एभिरिति अङानि, अर्थात् वे उपकारक तत्व जिनसे वस्तु के स्वरूप का बोध होता है। वेदों के वास्तविक अर्थ के ज्ञान के लिए जिन साधनों की उपयोगिता थी, उन्हें वेदांग कहते थे। वेदांगों के द्वारा मंत्रों का अर्थ, उनकी व्याख्या एवं यज्ञादि में उनके विनियोग का बोध होता था। धर्मशास्त्र के व्याख्याता याज्ञवल्क्य का कथन है कि वेदों का अध्ययन करते हुए गुरूजन उनकी शुद्धता पर बड़ा ध्यान देते थे। जैसाकि निरूक्त में कहा गया है कि–मन्त्रो हीनः स्वरतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थ' इत्त्यादि।

प्रारम्भ में वेदांग स्वतन्त्र विषय न होकर वेदाध्ययन के विशिष्ट उपयोगी प्रकार थे। बाद में ये स्वतन्त्र विषयों के रूप में विकसित हुए। सर्वप्रथम वेदांग के भेदों का उल्लेख मुण्डक उपनिषद् में अपरा विद्या के अन्तर्गत 4 वेदों के नामोल्लेख के बाद हुआ हैः–

''तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरूक्तं छन्दों ज्योतिषमिति।।''[36]

वेद के यथार्थज्ञान तथा कर्मकाण्ड में उक्त मन्त्रों के विनियोग के लिए छह अंगों के ज्ञान की आवश्यकता होती है। जो निम्न माने

जाते है। 1. शिक्षा, 2. व्याकरण, 3. छन्द, 4. निरूक्त, 5. ज्योतिष, 6. कल्प।

''शिक्षा व्याकरणं छन्दों निरूक्तं ज्योतिषं तथा।

कल्पश्चेति षडङानि वेदस्याहुर्मनीषिणः।।''[37]

ये वेदांग सामान्यतया सूत्र–शैली में लिखे गए हैं। वैदिक कर्मकांड, विनियोग एवं यज्ञ–विधि आदि के नियम बहुत विस्तृत और व्यापक थे, अतः संक्षेप में स्मरणार्थ सूत्र–शैली को अपनाया गया है।

पाणिनीय शिक्षा में वेद–पुरूष के 6 अंगों के रूप में 6 वेदांगों का वर्णन हैः–

छन्द वेद पुरूष के पैर हैं, कल्प हाथ हैं, ज्योतिष नेत्र हैं, निरूक्त कान हैं, शिक्षा नासिका है और व्याकरण मुख है।

''छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठयते।

ज्योतिषामयनं चक्षुनिरूक्तं श्रोत्रमुच्यते।।

शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य, मुखं व्याकरणं स्मृतम्।

तस्मात् साङमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।।''[38]

शिक्षा

वेदांगों में शिक्षा का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। इसे वेद पुरूष का घ्राण बतलाया गया है। जिस प्रकार मनुष्य की सुन्दरता उसके घ्राण से अधिक निखर जाती है,उसी प्रकार शिक्षा के द्वारा वेद का स्वप और उसका उच्चारण अत्न्त सुन्दर हो जाता है। शिक्षा वह विद्या है जिससे स्वर,वर्ण,प्रयत्न आदि से वेद मन्त्रों काभलीभॉति उच्चारण हो जाता है।

शिक्षा का अर्थ है– वर्णोच्चारण की शिक्षा देना। सायण ने ऋग्वेदभाष्य भूमिका में शिक्षा का अर्थ दिया है :– जिसमें स्वर, वर्ण आदि के उच्चारण की शिक्षा दी जाती है, उसे शिक्षा कहते हैं।

''स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा।''[39]

अतएव शिक्षा का उद्देश्य है– वर्णोच्चारण की शिक्षा देना, किस वर्ण का किस स्थान से उच्चारण किया जाता है, उसमें क्या प्रयत्न करना पड़ता है, वर्ण कितने है, उनका किस रूप में विभाजन होता है, कितने स्थान और प्रयत्न हैं, शरीर–वायु किस प्रकार वर्ण–रूप में परिवर्तित होती है, कितने स्वर हैं, किस स्वर का किस प्रकार उच्चारण किया जाता है, इत्यादि।''[40]

शिक्षा–ग्रन्थों का वैदिक संहिताओं से घनिष्ट सम्बन्ध है। इनमें शुद्ध उच्चारण और स्वर–संचार के नियम दिए हैं। इस विषय का विशेष वर्णन प्रातिशाख्य ग्रन्थों में है। वेदों की प्रत्येक शाखा से संबद्ध होने के कारण इन्हे 'प्रातिशाख्य' कहते हैं। मुख्य प्रातिशाख्य ये हैं– ऋग्वेद की शाकल शाखा का शौनकरचित ऋक्–प्राति– शाख्य, शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्द्रिन शाखा का कात्यायन–रचित 'शुक्लयजुः–प्रातिशाख्य', कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का 'तैत्तिरीय प्रातिशाख्य'। सामवेद के तीन प्रातिशाख्य हैं–सामप्रातिशाख्य, पुष्पसूत्र और पच्चविध–सूत्र। अथर्ववेद का 'अथर्व–प्रातिशाख्य' है, जिसे चातुरध्यायिका भी कहते हैं।

इनके अतिरिक्त छोटे आकार के कुछ शिक्षा–ग्रन्थ भी हैं। जिनमें विशेष उल्लेखनीय ये हैंः– ऋग्वेद आदि की पाणिनीय–शिक्षा, शुक्ल यजुर्वेद की याज्ञवल्क्य–शिक्षा, कृष्ण यजुर्वेद की व्यास–शिक्षा, सामवेद की नारद–शिक्षा और अथर्ववेद की माण्डूकी–शिक्षा। इनके अतिरिक्त भारद्वाज–शिक्षा, वसिष्ठ–शिक्षा, पाराशर–शिक्षा आदि ग्रन्थ भी हैं। उपलब्ध शिक्षा–ग्रन्थों की संख्या 34 है।[41] इनमें पाणिनीय–शिक्षा और व्यास–शिक्षा विशेष महत्वपूर्ण हैं।

तैत्तिरीय उपनिषद् में शिक्षा के 6 अंगों का वर्णन है– वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम और संतान।

वर्णः, स्वरः, मात्रा, बलम्, साम, संतानः, इत्युक्तः, शीक्षाध्यायः।'' [42]

संक्षेप में इनका विवरण निम्नलिखित है :–

1) **वर्ण**– संस्कृत वर्णमाला में 63 वर्ण (संवृत अ को विवृत अ से पृथक् मानने पर 64 वर्ण) है। त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शंभभते मताः, पा0 शिक्षा 3। वर्णमाला का शुद्ध ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है।

2) **स्वर**– उदात्त, अनुदात्त और स्वरित, ये तीन स्वर है। वेदों के स्वर–भेद से अर्थ–भेद हो जाता है।

3) **मात्रा**– स्वरों के उच्चारण में लगने वाले समय को मात्रा कहते हैं। ये तीन हैं– ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत। ह्रस्व की 1 मात्रा, दीर्घ की 2 मात्रा और प्लुत की 3 मात्रा होती है।

4) **बल**– वर्णों के उच्चारण में होने वाले प्रयत्न तथा उनके उच्चारण स्थान को बल कहते हैं। प्रयत्न 2 हैं– आभ्यन्तर और बाह्य। स्थान 8 हैं– कण्ठ, तालु आदि।[43]

5) **साम**– समविधि से अर्थात् स्पष्ट एवं सुस्वर से वर्णोच्चारण। वर्णो का स्पष्ट उच्चारण हो, किसी वर्ण को दबाकर न बोलें, बहुत शीघ्रता से न बोलें, स्वर एवं अर्थ–ज्ञान के सहित प्रत्येक वर्ण का स्पष्ट उच्चारण करें।[44]

6) **संतान**– संहितापाठ अर्थात् पदपाठ में प्रयुक्त शब्दों में सन्धि–नियमों का लगाना। सन्धि–नियमों का ज्ञान और उनका यथास्थान प्रयोग करना।

व्याकरण

यह शास्त्र प्रकृति और प्रत्यय काउपदेश कर पद तथा उसके स्वरूप को सिद्ध करता है ।व्याकरण का व्युत्तपत्तिलभ्य अर्थ है–पदों की मीमांसा करने वाला शास्त्र,'व्याक्रियन्ते शब्दा अनेन इति व्याकरणम्'।

'मुखं व्याकरणं स्मृतम्' व्याकरण को वेदपुरूष का मुख माना जाता है। मुख अभिव्यक्ति और विश्लेषण का साधन है, तद्वद् व्याकरण भी पद–पदार्थ, एवं वाक्य–वाक्यार्थ की अभिव्यक्ति तथा प्रकृति– प्रत्यय के विश्लेषण का साधन है। अतएव व्याकरण का अर्थ है– व्याकियन्ते विविच्यन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरण्म, जिसके द्वारा प्रकृति–प्रत्यय का विवेचन किया जाता है। यजुर्वेद में व्याकरण के सूक्ष्म रूप का वर्णन है कि प्रजापति ने रूपों में सत्य और अनृत (स्फोट और ध्वनि) का व्याकरण (विश्लेषण) किया। उसने असत्य में अश्रद्धा और सत्य में श्रद्धा की प्रतिष्ठा की।

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः।
अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छद्धाँ सत्ये प्रजापतिः।।[45]

कात्यायन और पतंजलि ने व्याकरण के पाँच प्रयोजन बताए हैं– 1. रक्षा (वेदों की रक्षा), 2. ऊह (यथास्थान विभक्तियों आदि का परिवर्तन), 3. आगम (निष्काम–भाव से वेदादि का अध्ययन), 4. लघु (संक्षेप में शब्द–ज्ञान), 5. असन्देह (सन्देह–निराकरण)।

रक्षोहागमलध्वसन्देहाः प्रयोजनम्।[46]

व्याकरण का प्राचीन रूप निर्वचन आदि के रूप में ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है। गोपथ ब्राह्मण (पूर्व0 1–24) में धातु, प्रातिपदिक, आख्यात, लिंग, विभक्ति, वचन, प्रत्यय, स्वर आदि के विषय में प्रश्न पूछा गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों के बाद प्रातिशाख्य ग्रन्थ व्याकरण के प्रारम्भिक और

व्यवस्थित रूप है। इनका उल्लेख पहले किया गया है। यास्क ने निरूक्त में शब्द की नित्यता, प्रातिपादिकों का व्युत्पत्र होना, आदि व्याकरण के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। व्याकरण का पूर्ण और व्यवस्थित रूप पाणिनि के समय से ही निर्धारित हुआ है।

पाणिनि ने अष्टाध्यायी में आपिशलि, काश्यप आदि 10 वैयाकरणों का उल्लेख किया है। प्राचीन ग्रन्थों में महेश्वर, व्याडि आदि 15 वैयाकरणों का उल्लेख मिलता है। ऋक्–प्रातिशाख्य, वाजसनेय0, साम0 और अथर्व आदि 10 प्रातिशाख्य ग्रन्थ प्राप्य हैं। इनके अतिरिक्त 7 अन्य वैदिक–व्याकरण ऋक्तंत्र, सामतन्त्र आदि मिलते हैं। इन ग्रन्थों में प्राचीन 59 आचार्यों के नाम भी उद्घृत हैं।[47]

मैकडोनल ने भारतीय व्याकरण की पूर्णता और सर्वोत्कृष्टता की प्रशंसा करते हुए कहा है कि– भारतीय वैयाकरणों ने जिस परिपूर्ण और अति विशुद्ध व्याकरण–पद्धति को जन्म दिया है, उसकी तुलना विश्व के किसी देश में प्राप्य नहीं है।[48]

छन्द

वेदग्रन्थोंकी विशुद्धता और उनकी स्वरबद्ध गति के ज्ञान के लिए छन्दशास्त्र की महती आवश्यकता होती है। वैदिक मन्त्रों के उच्चारण के लिए छन्दस् (छन्द) का ठीक ज्ञान अनिवार्य है। इसके लिए छन्दों–विषयक ग्रन्थों की रचना हुई। अभी भी इस विषय का अत्यल्प साहित्य उपलब्ध है।

यास्क ने निरूक्त (7–19) में छन्दस् का निर्वचन छद् (ढकना) धातु से दिया है– छन्दांसि छादनात् अर्थात छनद भावों को आच्छादित करके समष्टि रूप प्रदान करते हैं। कात्यायन ने सर्वानुकमणी में छन्द का लक्षण दिया है– यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः, अर्थात् संख्या–विशेष में वर्णो की सत्ता छन्द है। प्रत्येक छन्द में वर्णो की संख्या निर्धारित रहती है। 'वैदिक छन्द' उपशीर्षक में इसका वर्णन किया जा चुका है।

प्राचीन छन्दों–विषयक सामग्री निम्नलिखित ग्रन्थों में प्राप्त होती है– (1) शांखायन क्षौत–सूत्र (केवल 7–27 में), (2) ऋग्वेद–प्रातिशाख्य(पटल 16 से 18 में), (3) सामवेद का निदान सूत्र, (4) पिंगल–प्रणीत छन्द–सूत्र, (5) कात्यायन–कृत दो छन्दोऽनुक्रमणियाँ।

वैदिक छन्द वृत्तात्मक (वर्णवृत) हैं। इनमें प्रत्येक पाद में वर्णों की संख्या निर्धारित होती है। ऋक्–प्रातिशाख्य के तीन पटलों में ऋग्वेद में प्रयुक्त छन्दों का विस्तृत वर्णन है। ''निदान–सूत्र में वैदिक छन्दों के नाम और लक्षण दिए हैं। इसमें छन्दों के अतिरिक्त सामवेद के अंग– उक्थ, स्तोम, गान– का भी विवेचन है। कुछ प्राचीन लेखक इसे पतंजलि की रचना मानते हैं।''[49] इसमें 10 अध्याय हैं। अन्त में प्रयुक्त छन्दों की अनुक्रमणी दी गई है। पिंगल के छन्दःसूत्र के पूर्व भाग में वैदिक छन्दों का विवेचन है। उत्तर भाग में लौकिक छन्दों का विश्लेषण है। यद्यपि यह स्वयं को वेदांग कहता है, परन्तु रचना की दृष्टि से परवर्ती ज्ञात होता है, क्योंकि इसमें लौकिक छन्दों का विशेष विवेचन है। यह वैदिक छन्दों की अपेक्षा लौकिक छन्दों का अधिक प्रामाणिक ग्रन्थ है। कात्यायन–कृत छन्दोऽनुकमणी में ऋग्वेद में प्रयुक्त छन्दों की नामावलि है तथा उसी की सर्वानुक्रमणी के प्रारम्भ में 9 अध्यायों में वैदिक छन्दों पर संक्षिप्त निबन्ध है।

निरूक्त

इसमें वैदिक शब्दों के निर्वचन की पद्धति दी गई है। संप्रति यास्क (800 ई0पू0 के लगभग) कृत निरूक्त ही इस विषय का प्रामाणिक ग्रन्थ उपलब्ध है। यह 'निघण्टु' नामक वैदिक–शब्द–कोष पर आश्रित है तथा उसी का

व्याख्या ग्रन्थ है।प्राचीन परम्परा के अनुसार निघण्टु के रचयिता का नाम प्रजापति कश्यप माना जाता है। इसमें वैदिक मन्त्रों की निर्वचनात्मक व्याख्या का सर्वप्रथम स्तुत्य प्रयास है। इस वेदार्थ–पद्धति को नैरूक्त–पद्धति कहा जाता है। यास्क ने वैदिक देवता–वाचक शब्द अग्नि, इन्द्र,वरूण, सविता आदि को निर्वचनात्मक मानकर इनसे संबद्ध मन्त्रों के चार प्रकार के अर्थ प्रस्तुत किए हैं– आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक और अधियज्ञ। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने यास्क की प्रक्रिया को प्रामाणिक माना है और तदनुसार ऋग्वेद और यजुर्वेद का भाष्य किया है।

यास्क ने अपने पूर्ववर्ती 17 निरूक्तकारों (औदुम्बरायण, गार्ग्य, शाकपूणि आदि) का निरूक्त में उल्लेख किया है। निरूक्त के प्राचीन टीकाकारों में विशेष उल्लेखनीय हैं– दुर्गाचार्य, स्कन्दस्वामिन्, महेश्वर। निरूक्त का आलोचनात्मक संस्करण प्रकाशित करने का श्रेय डा0 लक्ष्मणसरूप को है। इन्होंने इसका अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित किया है। निघण्टु में 5 अध्याय हैं। (1) प्रथम तीन अध्यायों में पर्यायवाची शब्द हैं, जैसे– पृथ्वी–वाचक– 21 शब्द, मेघ–वाचक– 30 शब्द, वाणीवाचक– 57 शब्द, जलवाचक– 100 शब्द। निरूक्त के प्रथम तीन अध्यायों में इन पर्याय शब्दों की व्याख्या है, अतः इन तीन अध्यायों को नैघण्टुक काण्ड कहते हैं। (2) निघण्टु के चतुर्थ अध्याय में कठिन और अस्पष्ट वैदिक शब्द दिए हैं। इन शब्दों की व्याख्या एवं स्पष्टीकरण निरूक्त के 4 से 6 अध्यायों में है। इसे नैगमकाण्ड या ऐकपदिक कहते हैं। (3) निघण्टु के पंचम अध्याय में देवता–वाचक शब्द है। इनकी व्याख्या निरूक्त के 7 से 12 अध्याय में हैं इसे दैवत–काण्ड कहते है। इसमें पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक के देवों के विषय में विवेचन है। इसका एक परिशिष्ट भी 13 वें अध्याय के नाम से उपलब्ध है। इसमें अक्षर, सोम, जातवेदस् आदि का वर्णन है।

निरूक्त के प्रतिपाद्य विषय 5 हैं–वर्णागम, वर्ण–विर्पयय, वर्ण–विकार, वर्ण–नाश और धातुओं का अनेक अर्थो में प्रयोग।

वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च, द्वौ चापरौ
वर्णविकारनाशौ।
धातोस्तदर्थातिशयने योगस्तदुच्यते पच्चविधं
निरूक्तम्।।

शब्द–व्युत्पति, शब्द–निर्वचन–शास्त्र, भाषा–विज्ञान और अर्थ विज्ञान का यह सबसे प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थ है।

ज्योतिष

वेदांगों में ज्योतिष की गणना अत्यन्त महत्वपूर्ण मानी जाती है। जिस प्रकार मयूर की शिखा उसके शिर पर रहती हे,सर्पों की मणि उनके मस्तक पर रहती है,उसी प्रकार अंगों में ज्योतिष भी सबके मस्तक पर विराजमान रहता है–यथा–शिखमयूराणां समानांमणयो यथा,तद्वत्वेदांगशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम्। वैदिक यज्ञों के शुभ मुहूर्त–निर्धारण के लिए 'ज्योतिष' नामक वेदांग की आवश्यकता हुई। वेदांग–ज्योतिष में इसका महत्व बताया गया है कि यह शास्त्र यज्ञों का काल–विधान बताया है।

''वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानि पूर्वा
विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं, यो ज्योतिषं वेद स
वेद यज्ञम्।।''[50]

'वेदांग–ज्योतिष' नामक एक ज्योतिष का प्राचीन ग्रन्थ प्राप्त होता है। इसका दो वेदों से सम्बन्ध है– (1) यजुर्वेद से, याजुष ज्योतिष, इसमें 43 श्लोक है। (2) ऋग्वेद से, आर्च ज्योतिष, इसमें 36 श्लोक हैं। इसका कर्ता आचार्य लगध माना जाता है। (कालज्ञांन प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः, आर्च ज्योतिष, श्लोक 2)। डॉ0 थीबो, शंकर

बालकृष्ण दीक्षित, लोकमान्य तिलक तथा सुधाकर द्विवेदी आदि विद्वानों ने इसके श्लोकों की यथा–समय व्याख्या की है। ज्योतिष के सिद्धान्त–ग्रन्थों में गणना 12 राशियों से की जाती है, किन्तु इस ज्योतिष में राशियों का कही नाम–निर्देश नहीं है, अपितु 27 नक्षत्र ही गणना के आधार है। शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने वेदांग–ज्योतिष का समय 1,400 ई0 पू0 माना है।

वैदिक–ज्योतिष में सूर्य, चन्द्र , ग्रह तथा नक्षत्रों की गति का निरीक्षण, परीक्षण एवं विवेचन होता था। सौर और चान्द्र मासों की गणना होती थी। यज्ञिय कार्यो के एि चान्द्रमास ही मुख्य माना जाता है।

कल्प

वेदांगों में कल्पसूत्रों का महत्वपूर्ण स्थान है। वेद के व्याख्यानभूत ब्राह्मणग्रन्थों में यज्ञ–यज्ञादि का विधान इतना पौड़ होता था कि जनसामान्य–पण्डित के द्वारावह कमबद्ध होना कठिन था,अतः उस युग की प्रचलित शैली के अनुरूपपकल्पग्रन्थों की रचना की गयी जिसमें वेद विहीन कर्मों का कमबद्ध तथा व्यवस्थित वर्णन है–

''कल्पो

वेदविहितानांकर्मणामानुपूर्व्येणकल्पनाशस्त्रम्'' ।[51]

कल्प का अर्थ है– यज्ञिय विधियों का समर्थन और प्रतिपादन। 'कल्प्यते समर्थ्यते यागप्रयोगोऽत्र, इति व्युत्पत्तेः'। (सायण– ऋग्वेदभाष्य–भूमिका) कल्प की दूसरी व्याख्या है– जिसमें वैदिक कर्मों का व्यवस्थित रूप से वर्णन या प्रतिपादन होता है।

कल्पसूत्रों के 4 भेद– कल्पसूत्र 4 भागों में विभक्त हैं– (क) श्रौतसूत्र, (ख) गृह्य–सूत्र, (ग) धर्म–सूत्र (घ) शुल्ब–सूत्र।

(क) श्रौतसूत्र – श्रौतसूत्रों में महत्वपूर्ण वैदिक यज्ञों का क्रमबद्ध वर्णन है। इन यज्ञों में प्रमुख ये है– दर्श, पौर्णमास, सोमयाग, बाजपेय, राजसूय, सौत्रामणी, अश्वमेघ आदि। इनके अतिरिक्त दक्षितण, आहवनीय और गार्हपत्य अग्नियों की इष्टियों का वर्णन है। प्रमुख श्रौत सूत्र ये हैः– (1) ऋग्वेदीय–– आश्वलायन और शांखायन। (2) शुक्ल यजुर्वेदीय– कात्यायन श्रौतसूत्र। (3) कृष्ण यजुर्वेदीय– बौधायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी या सत्याषाढ, वैखानस, भारद्वाज, मानव और वाराह श्रौतसूत्र। (4) सामवेदीय– आर्षेय या मशक, लाटयायन, द्राह्यायण और जैमिनीय श्रौतसूत्र। (5) अथर्ववेदीय– वैतान श्रौतसूत्र।

(ख) गृह्यसूत्र – गृह्यसूत्रों में 16 संस्कारों, 5 महायज्ञों, 7 पाक–यज्ञों, गृह–निर्माण, गृह–प्रवेश, पशुपालन रोगनाशक विधियों आदि का वर्णन है। दसरी शब्दों में कहा जा सकता है। कि गृहस्थ–जीवन से संबद्ध सभी संस्कारों और विधियों का इनमें वर्णन है प्रमुख गृह्यसूत्र ये हैः– (1) ऋग्वेदीय–आश्वलायन, शांखायन और कौषीतक गृह्यसूत्र, (2) शुक्ल यजुर्वेदीय– पारस्कर गृह्यसूत्र। (3) कृष्ण यजुर्वेदीय– बौधायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, भारद्वाज, मानव और काठक गृह्यसूत्र। (4) सामवेदीय– द्राह्यायण, गोभिल, खादिर और जैमिनीय गृह्यसूत्र। (5) अथर्ववेदीय–– कौशिक गृह्यसूत्र।

(ग) धर्मसूत्र – धर्मसूत्रों में नीति, धर्म, रीति, प्रथाओं, चारों वर्णों और आश्रमों के कर्तव्यों और सामाजिक नियमों का वर्णन है। प्रमुख धर्मसूत्र ये हैः– (1) ऋग्वेदीय– वसिष्ठ और विष्णु धर्मसूत्र, (2) शुक्ल यजुर्वेदीय–– हारीत और शंख धर्मसूत्र, (3) कृष्ण यजुर्वेदीय– बौधायन, आपस्तम्ब और हिरण्याकेशी धर्मसूत्र, (4) सामवेदीय–गौतम धर्मसूत्र।

(घ) शुल्ब सूत्र – शुल्ब–सूत्रों में यज्ञवेदी के निर्माण से संबद्ध नाप आदि का तथा वेदों के निर्माण आदि के नियमों का वर्णन है। ये और

श्रौतसूत्रों से संबद्ध विषय का वर्णन करते है। इनमें भारतीय ज्यामिति के विकास का उत्कृष्ट रूप मिलता है। प्रमुख शुल्ब–सूत्र ये हैं––(1) शुक्ल–यजुर्वेदीय– कात्यायन शुल्बसूत्र, (2) कृष्ण यजुर्वेदीय–– बौधायन, आपस्तम्ब और मानव शुल्बसूत्र।

मैकडानल ने शुल्ब–सूत्रों का वैज्ञानिक महत्व स्वीकार करते हुए कहा है–– इन सूत्रों में रेखागणित –सम्बन्धी ज्ञान बहुत आगे बढ़ा हुआ पाया जाता है। वस्तुतः शुल्ब–सूत्र ही भारत के गणित–शास्त्रीय सर्वप्राचीन ग्रन्थ कहे जा सकते है।[52]

अनुक्रमणिकाएँ

वेदांगों के अतिरिक्त वेदों से संबद्ध अनुक्रमणिकाएँ भी हैं। इनमें ऋषियों, देवताओं, छन्दों और विषयों की विस्तृत सूचियाँ दी हुई हैं। इनमें शौनक–कृत आर्षानुकमणी आदि 7 अनुक्रमणियाँ और उसके शिष्य कात्यायन–कृत सर्वानुकमणी, जिसमें आर्ष आदि 5 अनुक्रमणियाँ हैं, विशेष उल्लेखनीय हैं। ये ऋग्वेद से संबद्ध हैं। इसी प्रकार अन्य वेदों की भी अनुक्रमणियाँ हैं।

धर्मशास्त्र का उद्भव एवं विकास

भारतीय संस्कृति समस्त संसार में जिन महत्वपूर्ण उपादानों से समस्त संसार में समादूत होकर गौरवान्वित है, उनमें धर्म का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वैदिक काल से ही धर्म का व्यापक स्वरूप ऋत के रूप में सुपरिचित एवं सर्वमान्य रहा है। हिन्दू धर्मशास्त्रों में मानवधर्मशास्त्र का स्थान सर्वोच्च माना जाता है। धर्मशास्त्र का उद्देश्य मनुष्य के विभिन्न धर्मों की व्याख्या कर मनुष्य मात्र को इस लोक और परलोक दोनों में सुख और शान्ति का पथ प्रदर्शन करना है। ''मनुष्य के इन विभित्र धर्मों में राजधर्म का भी प्रमुख स्थान माना गया है। इसीलिए हिन्दू धर्म शास्त्रों में जहां मनुष्य के विविध धर्मों की व्याख्या की गयी है वहाँ राजधर्म को भी उचित स्थान दिया गया है।''[53]

अखिल ब्राह्यण्ड की उस अपरिहार्य शक्ति का नाम धर्म है, जिसने सम्पूर्ण भूत भौतिक विश्व को धारण किया हुआ है। इसी चेतना ने मनुष्य को हित व कल्याण की ओर अग्रसर किया है। विद्धानों ने धर्म को अनेक प्रकार से सिद्ध किया है, जैसे ध्रियते लोकोऽनेन हति धर्म, अथवा 'धरति लोकं वा यः सः धर्मः' अर्थात् जिससे यह सारा संसार धारण किया जाता है या जो सारे संसार को धारण करता है वह धर्म है अथवा पुण्आत्मा लोग जिसे धारण करते हैं, उसे धर्म कहते हैं। इन सभी अर्थों को महाभारत में केवल एक श्लोक से प्रकट किया है–

'धारणाद् धर्ममित्याहुः, धर्मण विधृताः प्रजाः।

यः स्याद्धारणसंयुक्ते रा धर्म इति कथ्यते'

भारतीय धर्म चिन्तकों ने तो यहाँ तक माना है कि संसार सभी जड़ व चेतन पदार्थों का अस्तित्व जिस शक्ति या तत्व विशेष पर अवलम्बित है, उसी शक्ति या दान का नाम धर्म है। संसार में प्रत्येक पदार्थ में अपनी कुछ आन्तरिकवृत्ति वाली प्रदति निहित होती है, जैसे अग्नि में उष्णता, जल में शीतलता, मनुष्य में मनुष्यता इसी आन्तरिक वृत्ति का नाम धर्म है। इसी धर्म की वृद्धि से सतत् पदार्थों की मनुष्यों में वृद्धि होती है और इसी के नाम से उसका ह्रास होता है।

इसी धर्म के उपदेश के लिए चारों वेद, स्मृतियां और पुराण आदि प्रवृत्त हैं, इसलिए यह सृष्टि भी सत्य है कि 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' अर्थात् समस्त वेद धार्मिक विधि–विधान के लिए प्रवृत हुए हैं। धर्म अदृष्ट है, यह इन्द्रियग्राह्य नहीं है, इस प्रत्यक्षादि प्रमाणों से न तो उसे सिद्ध किया सकता है और न उसे जाना ही जा सकता है। वह तो केवल वेदैकगम्य है अर्थात् वेदवाक्यों के द्वारा ही उसका ज्ञान हो जाता है। समस्त वेद

विधिपरक है, अतः यह सिद्ध हुआ है कि वेदविहित जो समस्त फल है, वही धर्म है, फलतः वेद में बोधित विधि– 'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादि द्वारा प्रसिद्ध याग ही धर्म है।

धर्मसूत्रों व दर्शनों के बाद धर्म का सर्वतोभावेन विकति व परिष्कृत तथा व्यापक रूप हमें स्मृतियों में मिलता है। जहाँ मनुष्यय के जन्म से लेकर अन्त तक उसके प्रत्येक कार्यकलापों में आहार व्यवहार व व्यवस्था में धार्मिक भावना निर्देश है। मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्य स्मृति में मानव जीवन के उन सभी आवश्यक अंगों पर प्रकाश डाला गया है, जिन पर जीवन की सारी गति व विधि निर्भर है।

धर्म को केवल कर्म, जाति व व्यक्ति की संकुचित सीमा में न रखकर उसे सार्वभौम बना दिया गया, मनुष्य किसी भी देश में रहे, वह चाहे किसी जाति में रहे, या किसी भी वर्ण या वर्ग में रहे , उसे अपने अभ्युदय के लिए कुछ निर्दिष्ट नियमों का अवश्य पालन करना चाहिए, जैसे –

'धृति क्षमा दमोऽस्तेंय शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

धीर्विधा सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्'।।

मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्य स्मृतियों में धर्म के दस उपादानों या लक्षणों का निर्देश किया गया है, जो सार्वदेशिक तथा सर्वकालिक है। जैसे स्वाध्याय में निरन्तर दिया था सत्य बोलना यह धार्मिक गुण किसी देश विदेश या जाति विशेष के लिए हितकर हो, ऐसी बात नहीं है, अपितु विश्व के किसी भी देश, किसी भी काल में किसी भी जाति के लिए वे दस धार्मिक नियम लाभकारक ही है।

1. धृति–धैर्य– अनेक प्रकार की बाधाओं के उपस्थित होने पर भी आरम्भ किये गये किसी कार्य को अटल विश्वास के साथ पूरा करना ही धैर्य है। धैर्य मनुष्य के साहस और सफलता का द्योतक है।
2. क्षमा– सुख, दुःख, हर्ष एवं विषाद और मानापमान में भी समान होकर हम सबको अमृत की तरह पी जाना ही क्षमा है। क्षमा में उदारता का मान भी जिहित है, क्षमाशील व्यक्ति के शत्रु भी मित्र हो जाते है।
3. दम– मन इन्द्रियों का स्वामी है और इन्द्रियां तथा आत्मा का माध्यम है, इस प्रकार मन नियन्त्रण रखना इम कहा जाता है। इम का आश्रय लेकर ही वे योगाभ्यास कर सकता है, कवि काव्यसृष्टि कर सकता है, चित्रकार चित्र बना सकता है।
4. अस्तेय– कर्म में एकनिष्ट होकर अपनी आजीविका चलाते हुए, प्रत्यक्ष या षीत में किसी की वस्तु को न चुराना हो अस्तेय है। मनुष्य चोरी तब करता है जब वह अपने कर्तव्य से विमुख हो जाता है, धर्मशास्त्र द्वारा निर्धारित अपने वर्ण व नियमों का जब व्यक्ति उल।घन करता है, तो वह एक प्रकार से चोरी ही करता है। धर्मशास्त्र यह बतलाता है कि न्यायर्जित वस्तु का ही उपयोग करें, किसी भी वस्तु की ओर लालायित न रहें।
5. शौच– सर्वतोभावेन ब्राह्य व आभ्यन्तर की विशुद्धावस्था का नाम शौच है। बाह्य शुद्धि जलादि से होती है और आन्तरिक पवित्रता मन व इन्द्रियों के नियन्त्रण से होती हैं।
6. इन्द्रिय निग्रह– इन्द्रियों को बाह्य विषयों की ओर विचलित न होने देना ही इन्द्रिय निग्रह है। प्रायः इन्द्रियां बहिर्मुख होती है, अनुचित विषयों से उनका लगाव न रखकर अपने अभीष्ट विषय की ओर ले जाने से इन्द्रियों को निर्मलता तथा स्वस्थता बनी रहती है।

7. धी– बुद्धि–विवेक व शास्त्रीय ज्ञान को ही थी या बुद्धि कहते हैं, जो धी कर्तव्याकर्तव्य का निर्धारण करती है और जो अपत्यवत् सभी में व्यवहार दिखलाती है और यथा समय उचित व्यवहार करती है, उसी का नाम धी है।
8. विद्या– ज्ञानोपलब्धि का साधन विद्या है, विद्या मनुष्य का तृतीय नेत्र है, जिसका आश्रय गुरू है, विद्या मनुष्य के जीवन को उष्कर्ण की ओर ले जाने में उत्तर साधन है, यह कही भी किसी भी अवस्था में मनुष्य को सुख देने वाली है।
9. सत्य– जिस वस्तु की जिस प्रकार देखा या जाना हो, उसे उसी प्रकार का कहना सत्य या यथार्थ है। असत्य का परित्याग व सत्य का आचरण करने वाले मनुष्य ही सच्चे अर्थों में विद्वान व ज्ञानी होते है।
10. अक्रोध– क्रोध एक ऐसा अभिशाप है, जिसके वश में हुआ मनुष्य सभी कुछ भूल जाता है। क्रोध से विवेक या विचारशक्ति भ्रष्ट हो जाती है, तब मनुष्य सर्वनाश की ओर प्रवृत होता है। क्रोध पर हमेशा नियन्त्रण रखना चाहिए। यह तभी सम्भव है, जब कि मनुष्य धार्मिक जीवन व्यतीत करे। स्मृतिकारों ने व्यापक दृष्टि से इन दरा लक्षण वाले सार्वभौम धर्मों का निर्देश किया है, परन्तु धर्म के जो अन्य अवान्तर प्रकार है, वे देश विशेष जाति विशेष व वर्ण विशेष या आश्रम विशेष के लिए भी निर्दिष्ट है, जैसे– ब्राह्मण का धर्म अध्ययन व अध्यापन आदि है, तो यह जाति, वर्ण तथा उस व्यक्ति के सानध्य विशेष पर ही निर्भर है। कुछ नियम व धर्म उसमें भी कुछ सीमा तक सर्वसाधारण है जैसे द्विजति मात्र के लिए नित्य नैमितिक व प्रायिश्चत इत्यादि। कुछ नियम किसी जाति विशेष के लिए ही है, जैसे–शूद्रों के लिए आमन्त्रिक, क्रियाकलाप इत्यादि।

वैदिक धर्म का सबसे प्रबल अंग आचार आचारः प्रथमो धर्मः है क्योंकि भारतीय धर्मशास्त्र के अनुसार धर्म केवल दिखलाने, उपदेश देने या आडम्बरपूर्वक प्रदर्शन करने की वस्तु नहीं है, वह विधिवत् अनुष्टान करने की वस्तु है। पण्डितों की यह सूक्ति भी इसे पृष्ट करती है कि यस्तु क्रियावान् पुरूषः सः पण्डितः इत्यादि। अतः धर्म की पूर्णरूपता उसके आचरण या आचार में है। वेद, स्मृति व पुराणों में जिन सदाचारों का वर्णन है, उनके अनुसार जब मनुष्य अपना व्यवहार करना है, तभी वह सदाचारी कहा जाता है।

आचार के आधार पर ही भारतीय समाज का भव्य निर्माण हुआ है, इसके सर्वांगीण उन्नति में आचार का महान् योगदान है, यह एक हिन्दू धर्म का व्यावहारिक पक्ष है, इसीलिए तो इसे परम धर्म कहा गया है, चाहे कितना वेदशास्त्रादि पारंगत विद्धान् होने पर यदि वह आचारहीन है, तो उसको समाज में कुछ भी कीमत नहीं रह जाती है।

धर्मशास्त्रों के कार्य ने आचार को दीर्घ जीवन व सम्मान का कारण माना है, इसको भी धार्मिकों ने वेद व स्मृति के सह–आसन पर बैठाया है, 'वेद–स्मृतिः सदाचारः' इत्यादि। मनुष्य जितना भी ज्ञानार्जन करता है उस सबका उपयोग है उसके आचार या आचरण में लगता है। भारतीय धार्मिक आख्यानों में इस बात को सर्वत्र दिखाया गया है कि सारी बातें तो एक ओर है और मनुष्य का आचार एक ओर है, इसी आचार के कारण निम्न कोटि का मनुष्य भी ईश्वरतत्व तक का दर्शन कर सकता है। इसके अभाव में महर्षि को तपस्या भी व्यर्थ है, वह भी सामान्य व्यक्ति की तरह पाप का भागी हो सकता है। सारी वर्णाश्रम व्यवस्था का गूलाधार आचार ही है।

धर्म की आवश्यकता

इस संसार में हम जो कुछ सुनते है देखते हैं और जानते हैं, उसका प्रभाव हमारी इन्द्रियों व चित्त पर पड़ता है। जो बात हमारे चित्त के अनुकूल होती है, उससे सुख होता है और जो बात प्रतिकूल होती है, उससे दुःख होता है इससे यह सिद्ध है कि मनोकूलता में सुख है और मन की प्रतिकूलता में दुःख है।

मनुष्य सुखोपलब्धि हेतु ही धन–बैभवादि एकत्रित करता है, परन्तु ये सब एकान्ततः सुख के साधन न होकर दुःख के निदान बन जाते हैं। यदि कहीं किंचित् सुखाभास दिखलाई भी देता है, तो वह भी क्षणिक है। वस्तुतः यह अनुभवात्मक सुख भी दुःख की ही तरह एक प्रकार का मनोविकार ही है। विकार रहित चित्त में जिस प्रकार दुःख का कोई महत्व नहीं है, उसी प्रकार सुख का भी कोई महत्व नहीं है।

यही सुख–दुखः रहित चित्त की अवस्था ही परमोच्चावस्था है, जहाँ फिर प्रेरणाओं की कोई झलक भी नजर नहीं आती है। इस प्रकार चित्त के लिए कुछ उचित साधनों की आवश्यकता होती है, जैसे स्वाध्याय, सदाचार व योगाभ्यास आदि। इन्हीं के द्वारा चित्त की निवृत्तावस्था सम्पत्र हो सकती है, इन्ही सब उपायों के सम्यक् अनुष्ठान के लिए व्यक्ति ,समाज व देश को धर्मशास्त्र या धार्मिक भावना की आवश्यकता होती है, तदनुकूल आचरण करने से मनुष्य सुखदुःखातीत चित्त की उस परमोच्चावस्था को प्राप्त कर लेता है, जिससे आगे वह मोक्ष का अधिकारी हो जाता है। धर्मशास्त्रों के पवित्र निर्देशों तथा उनकी अनुज्ञाओं की प्रयोजनीयता आज के इस विज्ञानसंकीर्ण संकटापत्र युग में भी मानव जीवन की सुरक्षा हेतु और भी अधिक आवश्यक है।

आज हम जिस युग में जी रहे हैं, वह युग सन्ताप व असन्तोष की सरगर्मी से मानवता की चोटी पर प्रहार कर रहा है और स्थान–स्थान पर विघटनकारी प्रवृत्तियों पर रोक लगाने के लिए तथा सन्तप्त सोई हुई मानवता को जगाने के लिए भारतीय धर्मशास्त्रों द्वारा निर्दिष्ट सार्वभौम धर्म की परम आवश्यकता है।

स्पष्ट है कि धर्मशास्त्रों का मुख्य विषय धर्म है और उनमें प्रतिपादित धर्म का जो स्वरूप है– वह कर्तव्य–कर्म या नैतिक–विधान का वाचक है। समाज के घटक विभिन्न वर्णों का क्या सामाजिक कर्तव्य होना चाहिए इसका विवेचन वर्णधर्म है। चतुर्विध आश्रमों से गुजरने वाले एक आर्य का जीवन उन विभित्र अवस्थाओं में कैसा होगा इसका विवेचन आश्रमधर्म है। मानव अपने वैयक्तिक पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में जो कुछ पाप अथवा अनैतिक आचरण करता है उसका प्रायक्षित किस तरह किया जा सकता है इसका विवेचन नैमित्तिक धर्म है। धर्मसूत्रों के प्रतिपाद्य विषयों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि धर्मसूत्रों का आविर्भाव इसी वर्णधर्म, आश्रमधर्म और नैमित्तिक धर्मों के विवेचन से हुआ है। पूर्व–वैदिककाल में आर्यों का वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन काफी सरल था। यद्यपि पुरूषसूक्त से चारो वर्णों का उल्लेख मिलता है फिर भी हम यह कह सकते हैं कि पूर्व–वैदिककाल में वर्ण व्यवस्था पूर्ण व्यवस्थित नहीं हुई थी। उस समय विवाह आदि सामाजिक रीति रिवाज में वर्ण आदि का विचार नही के बराबर था। सम्भवतः उत्तर वैदिककाल में ही वानप्रस्थ एवं सन्यास जैसे निवृतिमूलक आश्रमों की धारणा प्रतिष्ठित हुई। निवृत्ति की ओर इसके उन्मुख होने के कतिपय कारण थे। यथा वृद्धावस्था में पारिवारिक विविध उलझनों ने जीवन के प्रति नैराश्यभावना उत्पत्र की होगी और उससे मुक्ति पाने के उपायों की खोज के क्रम में वानप्रस्थ एवं सन्यास जैसे आश्रमों की प्रतिष्ठा हुई होगी। जीवन के प्रति नैराश्यभावना का उदय स्वाभाविक रूप से हुआ होगा जिसमें बौद्धपूर्ण के विकास ने भी काफी हद तक सहायता की होगी। धार्मिक या सामाजिक व्यवस्थाएं अपने प्रारम्भ

काल में सर्जन सुलभ या सरल होती है। कालकम से उनमें विकृतियां आने लगती हैं और वे उन व्यवस्थाओं की समाप्ति में कारण बन जाती है। आर्यों में वर्णव्यवस्था, आश्रमव्यवस्था, आचार–व्यवहार सम्बन्धी नियम पहले मौखिक रूप में ही प्रचलित रहे होंगे और वह विधि बहुत दिनों तक चलती रही होगी। इस कथन की पुष्टि इस तरह होती है कि कतिपय आचार्यों द्वारा दी गई व्यवस्थाएं धर्मसूत्रों में प्रमाण के रूप में उद्धत हैं, उनका कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं मिलता। ''समय के प्रवाह के साथ वर्ण, आश्रम, नित्य–नैमित्तिक धर्म सम्बन्धी विधि विधानों का इतना बाहुल्य हो गया कि उनको मौखिक रूप से स्मरण रखना दुष्कर हो गया। अतः धर्मसूत्रों की रचना की गयी।''[54]

यहाँ प्रश्न उठता है कि मात्र वर्णधर्म, आश्रमधर्म तथा नैमित्तिकधर्म के विवरण प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थों को ही धर्मसूत्र क्यों कहा जाता है ? धर्म के घटक अनेक तत्वों का विवेचन प्रस्तुत करने के कारण भारतीय समाज में संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों तथा उपनिषदों को आज भी धर्मग्रन्थ के रूप में मान्यता प्राप्त है, फिर भी उनको धर्मसूत्र की संज्ञा क्यों नहीं दी गई? इसके समाधान में कहा जाता है कि संहिताएँ, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् हमारे धर्मग्रन्थ तो अवश्य है किन्तु इनको धर्मसूत्र नहीं कहा जा सकता क्योंकि इनकी रचना सूत्र–शैली में नही की गई है। दूसरी बात यह है कि उन ग्रन्थों में चारों वर्णो के कर्तव्यात्मक धर्म का सुव्यवस्थित विवेचन नहीं किया गया है। धर्मसूत्रों का मुख्य लक्ष्य था कि संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों एवं उपनिषदों में प्रतिपादित धार्मिक मान्यताओं के आधार पर चारों वर्णों तथा चारों आश्रमों का सुव्यवस्थित वर्णन सूत्र–रूप में किया जाय। यों तो धर्मसूत्रों में विविध विषयों का विवरण उपलब्ध होता है किन्तु उनका मुख्य विषय धर्म ही है। यही कारण है कि इन विशेष प्रकार के ग्रन्थों की धर्मसूत्र नाम से पुकारा गया । ''श्रौतसूत्र तथा गृह्यसूत्र में भी यज्ञ आदि महत्वपूर्ण धार्मिक कृत्यों का विवरण प्रस्तुत किया गया है, किन्तु उनको धर्मसूत्र नहीं कहा गया। इसका कारण यह है कि धर्मसूत्रों से जिस धर्म का व्याख्यान किया गया है वह सामयाचारिक अथवा स्मार्तधर्म है। धर्मसूत्रों में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि उनका सम्बन्ध स्मृति अथवा यामयाचारिक धर्म से है। आपस्तम्बधर्मसूत्र में ऐसा उल्लेख मिलता है कि मैं अब सामयाचारिकधर्म का वर्णन करूंगा ।''[55] जो धर्म एक सुदीर्घ परम्परा से सर्वमान्य सिद्धान्त के रूप में किसी सम्प्रदाय विशेष में प्रचलित हो उसे सामयाचारिक धर्म कहते हैं। इसी तरह जो धर्म एक लम्बी परम्परा से स्मृतिशास्त्र के ऊपर आधारित हो वह स्मार्त–धर्म कहलाता है। सामयाचारिक शब्द में प्रयुक्त 'समय' का अर्थ काल नहीं बल्कि सम्प्रदाय समझा जाता है। इस प्रकार स्मृति अथवा परम्परागत साम्प्रदायिक मान्यताओं पर आधारित धर्म के लिए यह आवश्यक नहीं है कि समाज के हर व्यक्ति को वह मान्य हो। इसीलिए तो धर्मसूत्रों में उनके प्रतिपाद्य सिद्धान्तों के समर्थन में कई हेतु उपस्थित किये जाते हैं। धर्मसूत्र का कहना है कि ''उनके द्वारा प्रतिपादित धर्म का स्वरूप स्मार्त अथवा सामयाचारिक है जिसका मुख्य स्रोत वेद है।''[56]

यह सही है कि धर्मसूत्रों में वर्णित कुछ विधानों की परम्परा प्राचीन रही होगी। समाज के विकास के साथ–साथ समस्याएं भी बढ़ती जाती हैं और समाज के व्यवस्थापकों का यह दायित्व होता है कि उन समस्याओं का समाधान में खोज निकाले, फलस्वरूप समाज में नये–नये विधानों का प्रचलन हो जाता है। समय के अनुसार सामाजिक मान्यताएं भी बदलती रहती है। किसी समय कोई विधान सर्वमान्य होता है और वही कालान्तर में अस्वीकृत हो जाता है। जब वह अस्वीकार्य हो जाता है तब दूसरी नयी मान्यताएं प्रस्थापित हो जाती है। इस प्रकार सामाजिक विधानों एवं रीति–रिवाजों की संख्या समाज के

विकास के साथ–साथ बढ़ती जाती है। संहिताओं तथा ब्राह्मणों का उद्देश्य सभी सामाजिक रीति–रिवाजों को संकलित करना नहीं था फिर भी उनमें वैसे कतिपय रीति–रिवाजों को संकलित करना नहीं था फिर भी उनमें वैसे कतिपय रीति–रिवाजों का उल्लेख मिलता है जिनका पूर्ण विवेचन धर्मसूत्रों में हुआ है। धर्मसूत्रों तक आते–आते वैदिक समाज बहुत विकसित हो चुका था। उनके रीति–रिवाज इतने अधिक हो चुके थे कि उनकी परम्परा मौखिक रूप में स्मरण रखना कठिन हो गया था। उस समय ऐसी आवश्यकता जान पड़ी कि स्मार्त–धर्मो का छोटे–छोटे सुत्रग्रन्थों के रूप में सुव्यवस्थित संकलन किया जाया फलस्वरूप स्मार्तधर्म को सुव्यवस्थित करने का कार्य सूत्र रूप में सम्पत्र हुआ। धर्म सूत्रकारों ने प्राचीन काल में (पूर्वजों में) प्रचलित विधि–विधानों को मात्र एक व्यवस्थित रूप ही नहीं दिया बल्कि अपने समय की सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और आर्थिक समस्याओं के ऊपर भी विचार कर उन पर अपने समय की मांग के अनुसार अपनी सम्मतियां भी दी। इसी परिस्थिति विशेष में प्राचीन धर्मसूत्रों की रचना हुई। सामाजिक विकास की प्रक्रिया चलती रही। ''कालक्रम से जब इन प्राचीन धर्मसूत्रों में वर्णित धर्म का स्वरूप समाज की विकसित एवं परिवर्तित परिस्थितियों में अपूर्ण समझा जाने लगा और सामाजिक मान्यताएँ कुछ बदल गई तो पुनः अनेक नये–नये धर्मसूत्रों की रचनाएँ हुई।''[57]

धर्मसूत्रों की विषयवस्तु एवं विकास–

धर्मसूत्रों में जिस धर्म का विवेचन हुआ है उनको तीन भागों में विभक्त किया जाता है–

1. वणधर्म
2. आश्रमधर्म
3. नैमित्तिकधर्म

उपर्युक्त तीनों धर्मों का विवेचन करना धर्मसूत्रों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। (गौतम धर्म सूत्र 19/1, विष्णु धर्म सूत्र 1/48, याज्ञवल्क्य स्मृति 1/1,) वर्णधर्म का विवेचन करते हुए धर्मसूत्र विभित्र वर्णों तथा उपवर्णों का और उनके धार्मिक कार्यों, विभिन्न विहित व्यवसायों का उल्लेख करते हैं। परिस्थितिवश यदि कोई विहित वर्ग के सम्पादन में असमर्थ हो जाते हैं, तो वैसे लोगों के लिए वैकल्पिक कर्मों का भी विधान धर्मसूत्रों में किया गया है। धर्मसूत्रों के अनुसार प्रत्येक कार्य जीवन के चार आश्रमों– ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास के अनुसार विभक्त है। इन चारों आश्रमों के कर्तव्यों का विस्तृत विवरण धर्मसूत्रों में प्रस्तुत किया गया है। प्रथम अध्याय के वर्णन क्रम में उपनयन, विद्यारम्भ, अनध्याय तथा विद्यार्थी एवं शिक्षक के कर्तव्यों का विवेचन किया गया है। शिक्षा की समाप्ति के बाद विद्यार्थी गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था। धर्मसूत्रकारों की राय में गृहस्थाश्रम सर्वोतम समझा गया है, क्योंकि सभी आश्रमों का आधार यही है। गृहस्थाश्रम–धर्म के वर्णन क्रम में धर्मसूत्र, विवाह, दाम्पत्य–सम्बन्ध, पुत्रों के प्रकार, दायभाग, मंच महायज्ञों आदि का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करते है। गृहस्याश्रम के बाद वानप्रस्याश्रम तथा उसके बाद सन्यासाश्रम की बारी आती है। इन दोनों आश्रमों के वर्णन–क्रम में उनके कई भेदों तथा आश्रमियों की जीवन–चर्चाओं का उल्लेख किया गया है। वर्णधर्म तथा आश्रमधर्मो का विवेचन करने के बाद धर्मसूत्रों में नैमितिकधर्म का उल्लेख किया गया है। ''मनुष्य के जीवन काल में होने वाले पापों की विस्तृत नामावली तथाउनके प्रायक्षित का पूर्ण विवरण भी धर्मसूत्रों में दिया गया है। जननाशौच, मरणाशौच, भक्ष्यमक्ष्य–विचार, आत्मस्वरूप, पुनर्जन्म आदि विषयों की चर्चा भी धर्मसूत्रों में पायी जाती है। संक्षेप में हम कह सकते है कि धर्मसूत्रों में सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं दार्शनिक विषयों का समावेश किया गया है।''[58]

धर्मसूत्र तथा कल्प सूत्र

वैदिक साहित्य में सूत्र साहित्य को वेदांग के अन्तर्गत कल्प शीर्षक में रखा गया है। इसलिए उसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय यज्ञ, गृह्यकार्य ,धार्मिक, सामाजिक रीति–रिवाज एवं आचार व्यवहार विषयक नियमों का निर्धारण है। प्रकृति में हमें थोड़ा विचार धर्मसूत्रों पर ही करना है क्योंकि यह सूत्र ही प्रधान विषय धर्म व धर्मशास्त्र के प्रतिपादक ग्रन्थ स्मृतियों के अत्यधिक सन्निकट हैं। समय–समय पर सामाजिक परिस्थितियों से प्रेरित होकर आवश्यकतानुसार धर्मसूत्रों की नयी रचनाएँ भी होती रही हैं। प्राचीन तथा आर्वाचीन कतिपय धर्मसूत्रों की रचना सूत्रकाल में की गई थी। दुर्भाग्यवश आज सभी धर्मसूत्र उपलब्ध नहीं हैं। धर्मसूत्रों में जो अभी उपलब्ध है उनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं– गौतम धर्मसूत्र, बौधायन आपस्तम्ब, विष्णु धर्मसूत्र आदि।

वैदिक ब्राह्मण के इतिहास में ब्राह्मण–काल के बाद एक ऐसा युग का प्रारम्भ होता है जिसे सूत्रकाल कहा जाता है। सूत्र साहित्य की अपनी प्रमुख विशेषता यह है कि वह कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक अर्थ के प्रतिपादन की क्षमता रखता है । सूत्र साहित्य वैदिक साहित्य से जोड़ने वाली एक सुन्दर कड़ी है। इस सूत्रकाल में जिन ग्रन्थों की रचनाएँ हुई उनमें बहुसंख्यक सूत्र–शैली में थे। इस तरह हम कह सकते हैं कि सूत्र–ग्रन्थों का निर्माण युग की आवश्यकता को देखते हुए उत्तर–वैदिक काल से प्रारम्भ हुआ। सूत्र शब्द का मूल अर्थ है 'धागा' किन्तु साहित्यिक दृष्टिकोण से सूत्र शब्द से वह रचना पद्धति समझी जाती है जिसमें प्रत्येक वाक्य अत्यन्त संक्षिप्त एवं सुसंगठित हो और उसमें प्रतिपाद्य की अभिव्यक्ति इस प्रकार हो कि उसे पुनः अगले वाक्य द्वारा कहने की आवश्यकता न हो। जिसमें थोड़े अक्षर हों, जो सन्देह सहित हो, सब तरह से सारयुक्त हो, पादपूरणार्थक पदों से रहित एवं निर्दुष्ट हो उसे सूत्र कहते हैं।

''अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारबद्धिश्वतो मुखम्।
अस्तोभामनवद्यं च सूत्रं सूत्रकृते विदुः।।''[59]

भारतवर्ष में सूत्रात्मक रचना शैली का प्रारम्भ उस समय हुआ जब भारतीय आर्यों की, यज्ञ, धर्म, दर्शन आदि विषयों से सम्बन्धित ज्ञान–विज्ञान तथा रीति–रिवाज, आचार–व्यवहारादि विषयक जानकारी इतनी विस्तृत हो गई थी कि उसे यथावत उपस्थित करना एवं सुरक्षित रखना दुष्कर हो गया था।''[60]

सूत्रकाल में व्याकरण, छन्द, ज्योतिष, दर्शन आदि अनेक विषयों से सम्बन्धित सूत्र–साहित्य का प्रणयन हुआ किन्तु यज्ञीय विधान, सामाजिक रीति–रिवाज एवं आचार–व्यवहार आदि से सम्बन्धित जिस सूत्र–साहित्य की रचना हुई वह कल्पसूत्र के नाम से जाना जाता है। कल्पशब्द यज्ञ यागादिक, धार्मिक विधि–विधान का वाचक है। ''कल्पो वेदविर्हितानां कर्मणामानुपूर्वकेण कल्पनाशास्त्रम्।''[61]

कल्पसूत्र के चार प्रकार उपलब्ध होते हैं–

1. श्रौतसूत्र : इसमें ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित यज्ञाक्रियाओं और उनके नियमादि का वर्णन पाया जाता है। इसकी रचना ऋत्विजों अथवा पुराहितों के लिए की गई थी। यज्ञनुष्ठानों के ज्ञान के लिए ये उपादेय हैं।
2. गृह्यसूत्र : इसमें मनुष्य के गर्भाधान से मृत्युपर्यन्त के सभी संस्कारों तथा श्राद्ध आदि का वर्णन है। इनके अतिरिक्त गृह–निर्माण, पशु–पालन, कृषि, जादूटोना, उत्सव, अपशकुन आदि विविध विषयों का भी इसमें उल्लेख किया गया है। गृहसूत्रों से तत्कालीन भारतीय समाज के घरेलू आचार विचार, रीति रिवाज, जीवन की

विविध कार्य प्रणालियों का परिचय प्राप्त होता है।

3. धर्मसूत्र : धर्मसूत्र गृह्यसूत्रों की ही एक श्रृंखला के रूप में हैं। इनमें धार्मिक नियमों, राजा एवं प्रजा के कर्तव्यों का विस्तृत वर्णन मिलता है। इन्हीं धर्मसूत्रों से मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति आदि स्मृतिग्रन्थों का विकास हुआ है जो व्यवहार शास्त्र के अत्यन्त उपादेय ग्रन्थ माने जाते हैं।

4. शुल्वसूत्र : शुल्व का अर्थ है माप की रस्सी। शुल्वसूत्र का सम्बन्ध श्रौतसूत्रों से है क्योंकि ये भी यज्ञानुष्ठान के एक भाग की पूर्ति करते है। ''शुल्वसूत्रों में वैदियों एवं यज्ञीय भूमि की पैमाइस, स्थान का चुनाव तथा वेदी–रचना आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है। ये सूत्र भारतीय ज्यामिति शास्त्र के अत्यत्न प्राचीन ग्रन्थ है।''[62]

प्रत्येक संहिताओं के अपने–अपने सूत्रग्रन्थ हैं–यथा–

(क) **ऋक् संहिता**

आश्वलायनश्रौतसूत्र
आश्वलायनगृह्यसूत्र
सांखायनश्रौतसूत्र
सांखायनगृह्यसूत्र

(ख) **शुक्लयजु संहिता**

कात्यायन श्रौतसूत्र
पारस्करगृह्यसूत्र
कात्यायनशुल्वसूत्र

(ग) **कृष्णायजु संहिता**

वौधायन श्रौतसूत्र
बौधायनगृह्यसूत्र
बौधायनधर्मसूत्र
आपस्तम्बश्रौतसूत्र
आपस्तम्बगृह्यसूत्र
आपस्तम्बधर्मसूत्र
हिरण्यकेशीश्रौतसूत्र
हिरण्यकेशीगृह्यसूत्र
भारद्वाजश्रौतसूत्र
भारद्वाजगृह्यसूत्र
वाराहश्रौतसूत्र
काठकगृह्यसूत्र

बौधायन और आपस्तम्य के शुल्वसूत्र भी हैं।

(घ) **सामवेद संहिता**

लाटनायनश्रौतसूत्र
गोभिलगृह्यसूत्र
ब्राह्यायनश्रौतसूत्र
ख्यादिरगृह्यसूत्र
जैमिनीय श्रौतसूत्र
जैमिनीयगृह्यसूत्र

(ड़) **अथर्व, संहिता**

वैतानश्रौतसूत्र
कौशिकश्रौतसूत्र

इसमें जादू–टोना इन्द्रजाल आदि का वर्णन है।

उपर्युक्त विवरण से प्रतीत होता है कि धर्मसूत्र 'कल्प' नामक वेदांग की एक इकाई है। धर्मसूत्र को धर्मशास्त्र नाम से भी जाना जाता है। हमारे पुरातन ऋषि–महर्षियों ने समाधिस्थ होकर अपने अखण्ड ज्ञानज्योति में प्रकाशमान परम्परागत ज्ञानराशि–स्वरूप वेदों को, जीवात्माओं के कर्तव्य–ज्ञान के लिए अत्यधिक किया है। वे विवेकी पुरूषों के लिए ही उपयोगी सिद्ध हुए सर्वसाधारण के लिए नहीं। इसलिए मनु, याज्ञवल्क्य आदि महर्षियों ने उस दुरूह ज्ञान को सर्वजनोपयोगी बनाने के लिए धर्मशास्त्रों का प्रणयन किया। धर्मशास्त्रों में धर्मशासक महर्षियों द्वारा प्रायः उसी वैदिक ज्ञान की स्मृति कराई गई, इसलिए उन रचनाओं को स्मृति–शब्द कहा

गया– ''धर्मशास्त्रं तु यै स्मृतिः''[63], इस तरह धर्मशास्त्र पद से धर्मसूत्र तथा स्मृति दोनों का स्मरण होता है।

धर्मसूत्र कल्पसूत्र का ही एक अंग है जिसका अनुक्रम की दृष्टि से तीसरा स्थान है। धर्मसूत्रों की व्याख्याओं से ज्ञात होता है कि श्रौतसूत्रों तथा गृह्यसूत्रों के रचना–काल में धर्मसूत्रों की पूर्ण मान्यता थी। श्रौतसूत्रों में कहा गया है कि यज्ञ का अधिकारी वही यजमान हो सकता है जिसका उपनयन संस्कार हो चुका हो। यज्ञोपवीत धारण का विधान भी धर्मसूत्रों में ही है श्रौतसूत्रों में नहीं। ''यज्ञों में यज्ञोपवीत धारण धर्मसूत्रों के अनुसार ही किया जाता था। अतः यह प्रमाणित होता है कि धर्मसूत्रों के विधान श्रौतयोगों के विधानों से पूर्व के ही हैं।''[64]

उपर्युक्त विचार कतिपय विद्वानों को स्वीकार्य नहीं है। उनका कहना है कि श्रौतसूत्रों में यज्ञोपवीत धारण का विस्तृत विधान इसलिए नहीं दिया गया कि उनकी रचना के समय यज्ञोपवीत आदि के विधान इतने प्रचारित हो चुके थे कि उनकी विस्तृत व्याख्या करने की आवश्यकता ही नहीं जान पड़ी।

दूसरा तर्क है कि कल्पसूत्रों में धर्मसूत्र, विवेचन के क्रम में श्रौतसूत्र तथा गृह्यसूत्रों के बाद तीसरे स्थान पर रखा गया है। धर्मसूत्र के रचयितओं ने श्रौतसूत्रों का उल्लेख भी किया है। मैक्समूलर का कहना है कि ''श्रौतसूत्रों तथा गृह्यसूत्रों की अपेक्षा धर्मसूत्रों में शूद्रों के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण मिलता है। इससे प्रतीत होता है कि श्रौतसूत्रों एवं गृह्यसूत्रों के बाद धर्मसूत्रों की रचना हुई।''[65]

धर्मसूत्र, श्रौतसूत्रों तथा गृह्यसूत्रों के बाद की रचना है इस बात की पुष्टि इससे भी हो जाती है कि धर्मसूत्र को श्रौतसूत्रों तथा गृह्यसूत्रों के परिशिष्ट के रूप में दिया गया है ऐसा मेक्समूलर महोदय का कहना है। उनके विचार से ''धर्मसूत्र की गणना सूत्रसाहित्य में न होकर परिशिष्ट साहित्य के अन्तर्गत होनी चाहिए।'' [66]

मैक्समूलर महोदय के उपर्युक्त विचार से भारतीय विद्वान् सहमत नही है। उनका तर्क है कि धर्मसूत्रों के अन्तर्गत बहुत से ऐसे विषय पाये जाते हैं जो गृह्यसूत्रों में भी वर्णित है। यदि धर्मसूत्र गृह्यसूत्रों के परिशिष्ट होते तो एक ही विषय का वर्णन कभी–कभी एक ही शब्दावली में दोनों में नहीं किया जाता। परिशिष्ट में तो उससे भिन्न विषय का विवेचन होना चाहिए। इसलिए धर्मसूत्र को गृह्यसूत्रों का परिशिष्ट नहीं माना जा सकता। ''उनको स्वतन्त्र साहित्य के रूप में ही स्वीकार करना उचित होगा।''[67]

धर्मशास्त्र के क्षेत्र में मनु, याज्ञवल्क्य दोनों स्मृतियाँ ऐसी हैं, जो आज भी भारतीय समाज के हृदय की हार बनी हुई हैं। इन्ही स्मृतियों में, मानवमात्र के कल्याणार्थ शाश्वत सत्य व सनातनधर्म के अनुष्ठान का दिव्य सन्देश भरा पड़ा है, जिसके अनुष्ठान से मनुष्य अभ्युदय तथा निःश्रेयस का भागी बनता है।

स्मृतियों का स्वरूप ,स्मृतियों की संख्या, स्मृतियों का महत्व

प्राचीन काल में 'स्मृति' शब्द का दो अर्थों में प्रयोग होता था। एक अर्थ था– वे सब ग्रन्थ जो 'श्रुति' की कोटि में नहीं आते थे, किन्तु प्रामाणिक माने जाने थे, यथा–पाणिनि का व्याकरण, श्रौत, गृह्य एवं धर्मसूत्र, महाभारत, मनु, याज्ञवल्क्य आदि के धर्मशास्त्र। श्रीमद्भगवद्गीता की गणना भी इसी कोटि में आती है। ''दूसरे सीमित अर्थ के अनुसार स्मृति शब्द केवल धर्मशास्त्रों का पर्यायवाची है।''[68] अर्थात् वे ग्रन्थ जो धर्म की व्याख्या करते हैं और प्रामाणिकता में वेदों के पश्चात् स्थान पाते हैं। ये ''ग्रन्थ उन ऋषियों द्वारा प्रणीत हुए माने जाते हैं, जो वेदों के मर्म को खूब जानते थे और जिन्होंने मनुष्यों के धर्म का

वर्ण, आश्रम, शक्ति परिस्थिति, काल और युग के अनुसार विस्तृत स्पष्टीकरण किया।''[69] इस प्रकार के बहुत से ग्रन्थ आवश्यकतानुसार समय–समय पर लिखे गये हैं।

स्मृतियों का स्वरूप एवं विषय–वस्तु

भारतवर्ष कर्मभूमि और धर्मभूमि दोनों है। हिन्दूधर्म सनातनधर्म के रूप में अक्षयवट की तरह है। हिन्दूओं के व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में धर्म का प्राधान्य है। इसलिए धर्म का व्यापक सन्दर्भ मिलता है। धर्म के विषय में जितनी चर्चा यहाँ हिन्दुओं में है उतनी अन्यत्र दुर्लभ है। धर्म के नाम पर यहाँ बड़ी–बड़ी लड़ाइयाँ लड़ी गई हैं, बड़े–बड़े धर्मधुरन्धरों के संघर्ष हुए हैं, शास्त्रार्थ हुए हैं। भारतीय सपूत वीरधर्म की रक्षा में अपने जीवन को हँसते–हँसते गँवा देते थे, इसलिए भारतीयों को धर्म प्राणों से भी प्यारा है। यहाँ के गुरूकुलों के शैक्षणिक वातावरण में धर्मशिक्षा का महत्वपूर्ण अंश है। 'सत्यं वद, धर्म चर' यही यहाँ का उद्घोष है। शास्त्रों में स्वर्ग–नरक की चर्चा भी खूब हुई है। स्वर्ग की प्राप्ति के लिए विभिन्न मार्ग बताये गये हैं।

वैदिक आर्यों की दृष्टि में स्वर्गसिद्धि का मुख्य साधन यज्ञ ही था। अतः एक से एक बढ़कर व्ययसाध्य यज्ञ भी यहाँ बहुत हुए हैं जिसकी चरम सम्पन्नता में हिंसा के मार्ग को अपनाने में हिन्दुओं को जरा सी भी हिचक नहीं हुई। ''दान धर्म के विषय में भी हिन्दू–शास्त्रों में बहुत महिमा गाई गई है। इस दान धर्म में अपनी और अपने पुत्रों तक की बलि दी गई है।''[70] इन सब के मूल में धर्म काम करता रहा है। इस धर्म–कर्म आचार–विचार के विषय में ब्राह्मण साहित्य का बहुत बड़ा योगदान है।

वैदिक आर्यों का जीवन धर्म–सम्बन्धी बातों में अधिक बीता है। इसलिए भारतीय जनजीवन में आचार–विचार का, यज्ञ–याग का, दान–उपादान का बड़ा महत्व हे। ब्राह्मण युगीन आचार–विचार की मान्यताओं के समर्थन में ब्राह्मण ग्रन्थ हैं और ब्राह्मण–ग्रन्थों के समर्थन में धर्मसूत्रों का सहारा लिया गया है, फिर ये सभी बातें स्मृति ग्रन्थों में अपना ली गई हैं। किन्तु स्मृतियों की शैली अलग है और समयानुकूल है। स्मृतियों में वर्णाश्रम धर्म की चर्चा तो हुई ही है, धर्म के अन्य विषयों की भी चर्चा हुई है। उधर ब्राह्मण ग्रन्थ वैदिक धर्म सम्प्रदाय एवं रीति परम्परा की भी सीमा में घिरे हुए थे और धर्मसूत्र ने वर्णाश्रम धर्म के कर्तव्याकर्तव्य पर ही अपनी इति लगा दी थी, लेकिन स्मृतिकारों ने अपनी–अपनी स्मृतियों में वर्णाश्रम धर्म के कर्तव्याकर्तव्य पर खुलकर विचार प्रस्तुत किया। साथ ही राजधर्म पर भी अपनी मनोहारी व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं, जिस पर ब्राह्मण–ग्रन्थ और धर्मसूत्र ग्रन्थ बिल्कुल मौन साधे हुए हैं। स्मृतिकारों ने भी अपने से पूर्व होने वाले स्मृतिकार की बातों का अन्धानुकरण नहीं किया, जो सिद्धान्त उन्हें अपने युगानुकूल जंचा, उसे तो सहर्ष ले लिया पर जो विचारधारा समयानुकूल नहीं दिखाई पड़ी, उसे बेखटके छोड़कर अपनी मान्यता की मुहर लगा दी। जब स्मृतियों को तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाता है, उनका अनुशीलन – परिशीलन किया जाता है, तब ये सब बातें सामने आती हैं, इसी प्रकार यहाँ यह कहा जाता है, तब ये सब बातें सामने आती हैं, इसी प्रकार यहाँ यह कहा जाता है कि याज्ञवल्क्य के पूर्व एक मानवधर्मशास्त्र एवं मनुस्मृति थी, जिसके आधार पर याज्ञवल्क्य स्मृति का निर्माण किया गया, परन्तु याज्ञवल्क्य ने मानव धर्मशास्त्र की एकदम नकल नहीं की, अपितु उस पर अपना नया विचार भी दिया। जैसे– मानव–धर्मशास्त्र से पूर्व धर्म और अर्थ को अलग–अलग दृष्टिकोण से देखने की रीति चली आ रही थी। जो ''राजधर्म एवं व्यवहार अर्थशास्त्र के अधीन होकर चल रहा था, उसको याज्ञवल्क्य ने अपनी याज्ञवल्क्य स्मृति में धर्म की परिधि में

लाकर धर्मशास्त्र का उपजीवी बना दिया। यही था याज्ञवल्क्य का अपना मौलिक नवीन चिन्तन।''[71] इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र – इन चारों वर्णों तथा ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और सन्यास –इन चारों आश्रमों की विधियों का प्रतिपादन करना स्मृतियों का विषय है।

इस प्रकार स्मृति ग्रन्थ भारतीय वर्णाश्रम धर्म एवं आचार–विचार के प्रतिपादक ग्रन्थ हैं; हिन्दुओं के विधिग्रन्थ हैं; हिन्दुओं के धर्मशास्त्र हैं। अंग्रेजी शासनकाल में भी इन ग्रन्थों की मान्यता रही है, जिसे 'हिन्दू लॉ' कहा गया है। राजकीय विधान में संशोधन–परिवर्धन ,जन्मजात संस्कार हैं और वहीं आज भी धर्मनिरपेक्ष स्वतन्त्र भारत में हो रहा है। फिर भी ये ऋषि प्रणीत स्मृति–ग्रन्थ अपने अमर संदेश सुनाकर भारतीय जनजीवन की गति व्यवस्था में सशक्त योग देते ही रहेंगे। कुछ स्थितियों को छोड़ दे ंतो वास्तव में हिन्दूधर्म सम्बन्धी विवेचन के लिए स्मृतियों की ओर झुकना ही पड़ता है।

श्रुतियों कि पश्चात् सामाजिक व्यवस्था को सुस्थिर रखने में 'स्मृतियों' का एक महत्वपूर्ण स्थान आता है। वेदों में सूत्रात्मक रूप से जिन सामाजिक विषयों का विवेचन हुआ है, वे अपने मन्त्र रूप में या बीज रूप में अच्छी प्रकार स्पष्ट नहीं हुए। अतः सामाजिक व्यवस्था को स्पष्ट करने एवं उसे सही रूप पर चलाने के लिए श्रुतियों के पश्चात् स्मृतियों का स्थान माना गया है।

संकुचित अर्थ में स्मृति से धर्मशास्त्र की उन रचनाओं का तात्पर्य है, जो प्रायः श्लोकों में हैं और उन्हीं विषयों का विवेचन करती हैं, जिनका प्रतिपादन धर्मसूत्रों में किया गया है।

इन स्मृतियों में अग्रणी हैं– मनु और याज्ञवल्क्य की स्मृतियाँ। 'मनुस्मृति' सबसे प्राचीन है और ईसा से कई सौ साल पहले रची गई थी। ''अन्य स्मृतियाँ 400 से 1000 ई0 के बीच की हैं। स्मृतिकारों की संख्या विस्तृत है।''[72] स्मृतियाँ प्रायः पद्य में हैं और भाषा की दृष्टि से स्मृतियाँ धर्मशास्त्र के बाद की रचनाएँ हैं। स्मृतियों की भाषा लौकिक संस्कृत है। विषयवस्तु की दृष्टि से स्मृतियाँ धर्मसूत्रों से अधिक व्यवस्थित और सुगठित हैं।

स्मृतिकारों का परिचय

मुख्य स्मृतिकार अठारह हैं– (1) मनु, (2) वृहस्पति, (3) दक्ष, (4) गौतम, (5) अंगिरा, (6) योगीश्वर (7) प्रचेता, (8) शातातप, (9) पराशर, (10) संवर्त, (11) उशनस, (12) शंख, (13) लिखित, (14) अत्रि, (15) विष्णु, (16) यम, (17) आपस्तम्ब (18) हारीत।(धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग–3, पृ0सं0 4।)

इनके अतिरिक्त उपस्मृतियों के लेखकों के नाम इस प्रकार से हैं –

''नारद पुलहो गार्ग्यः पुलस्त्यः शौनकः क्रतुः।
बौधायनो जातु कर्ण्यो विश्वामित्रः पितामहः।।
जाबालिनाचिकेतश्च स्कन्दो लौगाक्षिकश्यपौ।
व्यासः सनुत्कुमारश्च शान्तनुर्जनकस्था।।
व्याघ्रः कात्यायनश्चैव जातुकर्ण्यः कषिज्जलः।
बौधायनश्च काणादौ विश्वामित्रस्तथैव च।।
पैठीनसिर्गोभिलश्चेत्युपस्मृतिविधायकाः।।[73]

वीर मित्रोदय, परिभाषा प्रकरण के अनुसार अन्य स्मृतिकारों की संख्या इक्कीस है। ये स्मृतिकार निम्नलिखित हैं–

''वसिष्ठो नारदश्चैव सुमन्तुश्च पितामहः।
विष्णुः काष्णाजिनिः सत्यव्रतौ गार्ग्यश्च देवलः।।
जमदग्नि भरिद्वाजः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
आत्रेयः छागलयेश्च मरीचिर्वत्स एवं च।।
पारस्करश्चर्ष्यश्रृङो वैजवापस्तथैव च।
इत्येते स्मृति करति एकविंशतिरीरिताः।।[74]

याज्ञवल्क्य ने अपनी स्मृति में स्मृतिकारों एवं धर्मशास्त्र के प्रणेताओं की संख्या 20 निश्चित की है –

(1) मनु, (2) अत्रि, (3) विष्णु, (4) हारीत, (5) याज्ञवल्क्य, (6) उशनस, (7) अंगिरस, (8) यम, (9) आपस्तम्ब, (10) संवर्त, (11) कात्यायन, (12) वृहस्पति, (13) पराशर, (14) व्यास, (15) शंख, (16) लिखित, (17) दक्ष, (18) गौतम, (19) शातातम और (20) वसिष्ठा। इन्हें धर्मशास्त्र के स्मृतिकार माना गया है।(2 मन्वत्रिविष्णु हारीतयाज्ञवल्क्योशनोऽङराः।

यमावस्तम्ब संवर्ता कात्यायनप वृहस्पती।।
पराशर व्यास शङ्ख लिखिता दक्षगौतमो।
शातातपो वसिष्ठश्च धर्मशास्त्र प्रवर्तकाः।।[75]

वर्तमान भले ही स्मृतियों की संख्या विवादास्पद है। और गौतम केवल मनु का उल्लेख करते हैं। ''बौधायन ने सात, वशिष्ठ ने पाँच, तथा आतस्तम्ब ने दस स्मृतिकारों का उल्लेख किया है।''[76]

मनुस्मृति में छः और याज्ञ0 स्मृति में बीस स्मृतिकारों का उल्लेख पाया जाता है। पाराशर ने उन्नीस स्मृतिकारों का परिगणन करते हुए छः नाम और जोड़ दिये गये है। ''विश्वरूप ने दस नाम और जोड़ दिये। स्मृति चन्द्रिका, हेमान्द्रि एवं सरस्वती विलास ने उपस्मृतियों की संख्या छत्तीस बतायी है। यही संख्या भविष्य पुराण में भी मिलती है।''[77] बुद्ध–गौतम स्मृति में सत्तावन स्मृतियों का उल्लेख है। ''निर्णय सिन्धु और वीरमित्रोदय में यह संख्या सौ तक पहुंच जाती है।''[78] इन सभी स्मृतियों में समाज के धार्मिक, आर्थिक नैतिक, आध्यात्मिक और राजनैतिक पक्षों का व्यावहारिक दृष्टि से विशद एवं समीचीन विवेचन की दृष्टि से ही मनु और याज्ञवल्क्य स्मृति ही विशेष महत्वपूर्ण मानी जाती है। स्मृति श्रुति (वेद) पर ही आधारित मानी जाती है।''[79]

पं0 श्रीराम आचार्य ने तेइस स्मृतियों को इस प्रकार वर्णित किया है –

1. मनुस्मृति
2. गौतमस्मृति
3. औशनसस्मृति
4. वशिष्ठस्मृति
5. शातातपस्मृति
6. अंगिरसस्मृति
7. यमस्मृति
8. लिखितस्मृति
9. कात्यायनस्मृति
10. विष्णुस्मृति
11. याज्ञवल्क्यस्मृति
12. पराशरस्मृति
13. सम्वर्तस्मृति
14. दक्षस्मृति
15. व्यासस्मृति
16. आपस्तम्बस्मृति
17. हारीतस्मृति
18. शंखस्मृति
19. अत्रिस्मृति
20. वृहस्पतिस्मृति
21. बौधायनस्मृति
22. लध्वाश्वलायनस्मृति
23. पुलस्त्यस्मृति।

''मनुर्बहपतिर्दक्षो गौतमोऽथ यमोऽङराः।
योगीश्वरः प्रचेताश्च शातातप–पराशरौ।।
संवर्तोशनसौ शंख – लिखितावत्रिरेव च।

विष्णवापस्तम्ब – हारीता धर्म–शास्त्र –
प्रवर्तकाः।।
एते ह्यष्टादश प्रोक्ताः मुनयो नियत–व्रताः।
जाबालिर्नाचिकेतश्च स्कन्दो लौगाक्षि–कश्यपौ।।
व्यासः सनत्कुमारश्च सुमन्तुश्चं पितामहः।
व्याघ्रः कार्ष्णाजिनिश्चैव जातूकर्णः कपिंजलः।।
बौधायनश्च काणादो विश्वामित्रस्तधैव च।
पैठीनसिर्गोभिलश्च
उपस्मृति–विधायकाः।।''[80]

महामहोपध्याय डॉ0 पी0वी0 काणे ने अपने 'धर्मशास्त्र के इतिहास' में पूर्व वर्णित स्मृतियों से भी अधिक स्मृतियों की संख्या का वर्णन किया है।

कुछ पुस्तकों एवं स्मृतियों में स्मृतियों की संख्या छत्तीस बताई गई है। कुछ विद्वानों की ऐसी भी धारणा है कि इन छत्तीस स्मृतियों में कुछ उपस्मृतियाँ भी हैं–

(1) मनु, (2) अंगिरस, (3) व्यास, (4) गौतम, (5) अत्रि, (6) उशनस, (7) यम, (8) वसिष्ठ, (9) दक्ष, (10) संवर्स, (11) शातातप, (12) पराशर, (13) विष्णु, (14) आपस्तम्ब, (15) हारीत, (16) शंख, (17) कात्यायन, (18) भृगु, (19) प्रचेता, (20) नारद, (21) बौधायन, (22) पितामह, (23) सुमन्त्र, (24) कश्यप, (25) पैठीन, (26) बभु, (27) व्यार्ध, (28) सत्यव्रत (29) भरद्वाज, (30) गार्ग्य, (31) कार्ष्णाजिनि, (32) जावालि, (33) जमदिग्न (34) लौगाक्षि, (35) अत्रि, (36) ब्रह्म आदि।

'' तेषां मन्वङिरौ व्यास गौतमात्रयुशनो यमाः।
विशष्ठ दक्ष संवर्त शातातप पराशराः।।
विष्वापस्तम्ब हरीताः शंख कात्यायनो भृगुः।
प्रचेता नारदो योगी बौधायन पितामहोः।।
सुमन्तुः कश्यपो बभु पैठीनो व्याघ्र एव च।
सत्यव्रतो भरद्धाजो गार्ग्यः कार्ष्णाजिनिस्तथा।।
जाबालिर्जमदग्निश्च लौगाक्षिर्ब्रह्म सम्भवः।
इति धर्म प्रणेतारः षटत्रिंशदृषयस्तथा।''[81]

इस प्रकार से छत्तीस स्मृतियाँ भी मिलती हैं। इस छत्तीस स्मृतिकारों की संख्या से ही अवगत होता है कि समय–समय पर प्राचीन भारतीय स्मृतिकारों और समाजशास्त्रियों ने सामाजिक व्यवस्था को सुरक्षित रखने और समाज को सुरक्षित रूप से चलाने के लिए स्मृतियों की रचना की है। समाज के पर्यावरण को अच्छा रखने के उद्देश्य से एवं समाज में शान्ति व्यवस्था बनाए रखने के उद्देश्य से प्राचीन भारतीय स्मृतिकारों ने समाजशास्त्रीय दृष्टि को ध्यान में रखते हुए प्राणिमात्र के प्रति दया के भावों को रखने के नियमों का प्रतिपादन किया है।

प्राचीन भारतीय स्मृतिकारों ने मानवीय जीवन को सभी जीवों के जीवन से श्रेष्ठ माना है, एवं सृष्टि के उपक्रम में मानव की उत्पत्ति का उद्देश्य शुभकर्मों को करते हुए सामाजिक नियमों का, जिन्हें पवित्रता के कारण 'धर्म' का नाम देकर धर्मशास्त्र अथवा 'स्मृतियाँ' कहा गया है, पालन करने के लिए प्रेरणा दी है। ''प्राचीन भारतीय स्मृतिकारों ने युग के अनुरूप एवं मानव की मनोवृत्तियों का चिन्तन कर, तदनुरूप ही अपनी स्मृतियों में समाज के संचालन एवं समाज में जीवन यापन करने के लिए अनेक जीवनोपयोगी नियमों का प्रतिपालन किया है।''[82]

समाज में सदा से दो प्रकार के व्यक्ति रहे हैं और दोनों का उद्देश्य अच्छे समाज का निर्माण करना रहा है। एक चिन्तन करने वाले स्मृतिकार, दूसरे चिन्तन की व्यवस्था से समाज को चलाने वाले शासक। चिन्तन करने वाले विचारक शासक और जनता में होने वाली भलाई एवं बुराईयों पर अधिक ध्यान देकर समाधान एवं सुधार का मार्ग बताते थे, वे शासन से दूर रहकर समाज का कल्याण करते थे।

स्मृतियों का रचनाकाल

हिन्दू धर्म के नियामक धर्मग्रन्थों की रचना कब से शुरू हुई, यह प्रश्न महत्वपूर्ण है। इस प्रश्न का निश्चित उत्तर कठिन है; फिर भी इसके विषय में जो संकेत प्राचीन ग्रन्थों में मिलते हैं और इतिहासकारों ने जो उपाय सुझाये हैं, उनका दिग्दर्शन संक्षेप में करना हमारा उद्देश्य है।

यास्क ने अपने निरूक्त में वसीयत–सम्बन्धी पुरूष की ओर जो संकेत किया है, उससे यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने कुछ ग्रन्थों की ओर इशारा किया है, जिनसे स्मृतियों के सन्दर्भ में कुछ संकेत मिलते हैं–'' अथैतां जाम्या रिक्त प्रतिषेधा उदाहरन्ति,ज्येष्ठं पुत्रिकाया इत्येके।''[83]

इससे अनुमान लगाया जाता है कि यास्क के पूर्व जो ग्रन्थ थे, वे ऋचाबद्ध न होकर श्लोकबद्ध रूप में थे, क्योंकि यास्क ने पद्य के रूप में वसीयत सम्बन्धी उद्धरण दिया है, ऋचा के रूप में नहीं। इस आधार पर यास्क के पूर्व धर्म सम्बन्धी ग्रन्थों की तिथि बहुत प्राचीन ठहरती है। इसमें अन्य पुष्ट प्रमाण भी आयें हैं। श्री पी0वी0 काणे के अनुसार ''गौतम, बौधायन तथा आपस्तम्ब के धर्मसूत्र निश्चित रूप से ईसापूर्व 600 और 300 के बीच के हैं। गौतम ने धर्मशास्त्र के विषय में बताया हैं; बौधायन ने भी धर्मशास्त्र के छात्रों की ओर संकेत करते हुए 'धर्मशास्त्र' शब्द का प्रयोग किया हे। पी0वी0 काणे के अनुसार याज्ञवल्क्य स्मृति का समय 100 से 300 ई0 के उपरान्त बताया गया है।''[84]

याज्ञवल्क्य स्मृति में उल्लिखित[85] कुछ प्रमुख स्मृतिकारों की स्मृतियों का संक्षिप्त प्रस्तुत है। ये स्मृतिकार हैं–

(1) मनु, (2) अत्रि, (3) विष्णु, (4) हारीत, (5) अंगिरस, (6) यम, (7) संवर्त, (8) कात्यायन, (9) वृहस्पति, (10) पराशर, (11) व्यास, (12) शंख, (13) लिखित, (14) दक्ष, (15) याज्ञवल्क्य, (16) शातातप, (17) वशिष्ठ, (18) उशनस, (19) आपस्तम्ब तथा गौतम।[86]

(1) मनुस्मृति

मनुस्मृति में बारह अध्याय तथा छब्बीस सौ चौरानवे (2694) श्लोक हैं। मनुस्मृति सरल भाषा में लिखी गई है। मृच्छकटिक नामक नाटक में मनुस्मृति का नाम उल्लिखित हुआ है। वाल्मीकीय रामायण में भी मनुस्मृति के कुछ श्लोक मनु के नाम से प्रस्तुत हुए हैं। मनुस्मृति याज्ञवल्क्य स्मृति से बहुत पुरानी स्मृति है। मनुस्मृति याज्ञवल्क्य स्मृति की अपेक्षा अपूर्ण एवं अनियमित रूप से वर्णित है। कुछ विद्वान् इसका समय ''दो सौ (200) ई0 पू0 से दो सौ ई0 (200 ई0) तक का निश्चित करते हैं।[87]

(2) अत्रिस्मृति

मनुस्मृति से पता चलता है कि अत्रि प्राचीन धर्मशास्त्रकार थे। अत्रि का धर्मशास्त्र नौ अध्यायों में है। इन अध्यायों में दान, जप, तप का वर्णन है, जिनसे पापों से छुटकारा मिलता है। कुछ अध्याय गद्य और पद्य दोनों में ही है। इनके कुछ श्लोक मनुस्मृति में आते हैं।

हस्तलिखित प्रतियों में अत्रि स्मृति या 'अत्रि संहिता' नामक एक अन्य ग्रन्थ मिलता है। अत्रि स्मृति में 400 श्लोक हैं। इसमें स्वयं अत्रि प्रमाण स्वरूप उद्धृत किये गये हैं। ''अत्रि स्मृति में आपस्तम्ब, यम, व्यास, शंख, शातातप के नाम एवं उनकी कृतियों का वर्णन किया गया है।''[88]

(3) विष्णु स्मृति

विष्णु स्मृति में 100 अध्याय हैं। इस स्मृति की एवं मनु स्मृति की 160 बातें विल्कुल समान हैं। ऐसा लगता है कि कुछ स्थानों पर तो मनुस्मृति के पद्य गद्य में रख दिये गये हों। याज्ञवल्क्य ने भी विष्णुधर्मसूत्र से

शरीरांग–सम्बन्धी ज्ञान ले लिया है। विष्णुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति के बाद की कृति है। यह स्मृति भगवद्गीता, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य तथा अन्य धर्मशास्त्रकारों की ऋणी है। मिताक्षरा ने विष्णुस्मृति का 30 बार वर्णन किया हैं।'' स्मृति चन्द्रिका में 225 बार विष्णु के उदाहरण आये हैं।''[89]

(4) हारीत स्मृति

हारीत के व्यवहार–सम्बन्धी पद्यावतरणों की चर्चा अपेक्षित है। स्मृति चन्द्रिका के उद्धरण में आया हैं–

''स्वधनस्य यथा प्राप्तिः परधनस्य वर्जनम्।

न्यायेन यत्र क्रियते व्यवहारः स उच्चयते''।।

उन्होंनें इस प्रकार व्यवहार की परिभाषा की है। नारद की भाँति हारीत ने भी व्यवहार के चार स्वरूप बताये हैं। जैसे–धर्म, व्यवहार, चरित्र एवं नृपाज्ञा हारीत, वृहस्पति एवं कात्यायन के समाकालीन लगते हैं। विद्वानों ने इनका समय 400 तथा 700 के बीच स्वीकार किया हैं।

(5) अङिरस स्मृति

याज्ञवल्क्य ने अंगिरा को धर्मशास्त्रकार माना है। विश्वरूप के कथनानुसार परिषद् में 121 ब्राह्मण निवास करते थे। इसी प्रकार अङिरस की बहुत सी बातों का वर्णन विश्वरूप ने दिया है।

अङिरस स्मृति केवल 72 श्लोकों में है। यह स्मृति वृहत् का संक्षिप्त रूप है। अंगिरस स्मृति में आपस्तम्ब व अंगिरस के नाम आते हैं। इसके उपपन्त्य श्लोक में स्त्रीधन को चुराने वाले की आलोचना की गई है।

(6) यम स्मृति

वशिष्ठ धर्मसूत्र ने यम को धर्मशास्त्रकार मानकर उनकी स्मृति से उदाहरण लिया है। याज्ञवल्क्य ने यम को धर्मवक्ता बताया है। इस स्मृति में 78 श्लोक हैं। इस स्मृति के कुछ श्लोक मनुस्मृति से मिलते जुलते हैं। यम ने नारियों के लिए संन्यास वर्जित किया है।

(7) संवर्त स्मृति

याज्ञवल्क्य की सूची में संवर्त एक स्मृतिकार के रूप में आते हैं। संवर्त स्मृति में 227 से 230 तक श्लोक उपलब्ध होते हैं। आज जो प्रकाशित संवर्त स्मृति मिलती है, वह मौलिक स्मृति के अंश का संक्षिप्त सार मात्र प्रतीत होता है।

(8) कात्यायन स्मृति

शंख, लिखित, याज्ञवल्क्य एवं पराशर आदि स्मृतिकारों ने कात्यायन को धर्म वक्ताओं में गिना है। कात्यायन ने नारद एवं वृहस्पति को अपना आदेश माना है। कात्यायन ने स्त्रीधन पर जो लिखा है, वह उनकी व्यवहार–सम्बन्धी कुशलता का परिचायक है। इस निबन्धों में कात्यायन के 900 श्लोक उद्धृत हुए हैं। कात्यायन का काल–निर्णय सरल नहीं है। वे मनु एवं याज्ञवल्क्य के बाद आते हैं। कात्यायन अधिक से अधिक ईसा के बाद तीसरी या चौथी शताब्दी के माने जाते हैं।[90]

(9) वृहस्पति स्मृति

वृहस्पति स्मृति, मनुस्मृति का पूर्ण अनुकरण करती है। इस स्मृति में बहुत से श्लोकों का नारद स्मृति के समान विवरण मिलता है। यह स्मृति मनु व याज्ञवल्क्य स्मृति के बाद की स्मृति है। इन स्मृति का समय छठी या सातवीं शताब्दी है। कात्यायन और विश्वरूप ने इसका कई बार वर्णन किया है। वृहस्पति स्मृति में 711 श्लोक हैं।

(10) पराशर स्मृति

इस स्मृति में 12 अध्याय और 512 श्लोक है। आचार और प्रायश्चित इसके विषय हैं। याज्ञवल्क्य इसका उल्लेख करते हैं। यह एक प्राचीन प्रामाणिक स्मृति मानी जाती है। इसका रचना–काल 100 से लेकर 501 ई0 के बीच में माना गया है।

(11) व्यास स्मृति

व्यास स्मृति चार अध्यायों एवं 250 श्लोकों में निबद्ध है। व्यास ने अपनी स्मृति की घोषणा बनारस में की थी। व्यास ने व्यवहार विधि का वर्णन किया हे। व्यास स्मृति की बहुत सी बातें नारद, कात्यायन एवं वृहस्पति आदि से मिलती है। व्यास के अनुसार उत्तर के चार प्रकार हैं–1. मिथ्या, 2. सम्प्रतिपत्ति, 3. कारण एवं 4. प्राड्न्याय। व्यास स्मृति का रचनाकाल ईसा के बाद दूसरी एवं पांचवी शताब्दी के बीच माना जाता है।

(12–13) शंख एवं लिखित स्मृति

याज्ञवल्क्य ने शंख, लिखित को धर्मशास्त्रकारों में गिना है। शंख एवं लिखित स्मृति प्राचीन है। इस स्मृति में 18 अध्याय तथा शंख स्मृति के 330 तथा लिखित स्मृति के 93 श्लोक पाये जाते हैं। मित्ताक्षरा में इस स्मृति के 50 श्लोक उद्धृत हुए हैं। यह धर्मसूत्र गौतम एवं आपस्तम्ब के बाद की किन्तु याज्ञवल्क्य स्मृति के पहले की रचना है। इसके प्रणयन का काल ई0पू0 300 से लेकर सन् 100 के बीच में माना गया हैं।

(14) दक्ष स्मृति

याज्ञवल्क्य ने दक्ष का उल्लेख किया है। विश्वरूप, मिताक्षरा अपरार्क ने दक्ष से उदाहरण लिए हैं। दक्ष के व्यवहार–सम्बन्धी अपरार्क ने दक्ष से उदाहरण लिए हैं। दक्ष के व्यवहार–सम्बन्धी निम्नलिखित दो श्लोक, जिनमें दान में न दिये जाने वाले नौ पदार्थो की चर्चा की गई हैं, बहुधा प्रस्तुत किये जाते हैं–

''सामान्यं याचितं न्यास आदिर्दाराश्व तद्धनम्।

क्रमायातंच निक्षेपः सर्वस्व चान्वये सति।।

आपत्स्वति न देयानि नव वस्तूनि सर्वदा।

यो ददाति स मूढात्मा प्रायश्चित्तीयते नरः।।''[91]

यह स्मृति वस्तुतः बहुत पुरानी है।

(15) याज्ञवल्क्य स्मृति

याज्ञवल्क्य स्मृति में 1010 श्लोक हैं। यह मनुस्मृति से अधिक नियमित है। इसमें क्रमबद्ध रूप से थोड़े में सब कुछ वर्णित है। अनुष्टुप छन्द में यह सम्पूर्ण ग्रन्थ सृजित है। संक्षिप्त होते हुए भी यह दुर्बोध नहीं है। इसमें वर्ण; आश्रम आदि के धर्मो का अच्छा वर्णन किया गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति अवश्य ही मनु के पीछे की है। अतः यह ''स्मृति प्रथम शताब्दी ई0पू0 से पहले को नहीं हो सकती। इस स्मृति का रचनाकाल प्रथम शताब्दी ई0पू0 से लेकर 300 ई0 तक होना चाहिए।''[92]

(16) शातातप स्मृति

याज्ञवल्क्य एवं पराशर ने शातातप को धर्मवक्ताओं में माना है। मिताक्षरा, स्मृति चन्द्रिका तथा अन्य ग्रन्थों में शातातप के बहुत से श्लोक लिये गये हैं। शातांतप के नाम की कई स्मृतियां हैं। जीवानन्द के संग्रह में कर्मविपाक नामक शतातप स्मृति है, जिसमें छः अध्याय एवं 231 श्लोक हैं। यह बहुत ही प्राचीन स्मृति है।

(17) वशिष्ठ स्मृति

भगवान् श्रीराम का नाम लेते समय हमारे मन में एक और नाम स्मृति का विषय बनता है और वह नाम मुनि वशिष्ठ का है, जिन्हे अपने

तप, ज्ञान आदि से ब्रह्मषि का पद प्राप्त हुआ हैं। इन्होंने तीस अध्यायों में समाप्त होने वाली अपनी वशिष्ठस्मृति के अध्याय 16, 17 और 18 में न्याय प्रक्रिया, साक्षी, दाय विभाग तथा राजा के कर्त्तव्यों का वर्णन किया है।

(18) **उशनस स्मृति**

इसमें मनु, भृगु का नाम आया है। इसमें पुराण, मीमांसा, वेदान्त, पांचरात्र, कापालिक एवं पाशुपत का वर्णन आया है।

(19) **आपस्तम्ब स्मृति**

इसमें संहिताओं के अतिरिक्त ब्राह्मणों के उद्धरण उल्लिखित हैं। इसमें मीमांसा के बहुत से पारिभाषिक शब्द एवं सिद्धान्त पाये जाते हैं। अपरार्क, हरदन्त, स्मृतिचन्द्रिका तथा अन्य ग्रन्थों में इसके बहुत से उद्धरण हैं।

(20) **गौतम स्मृति**

ऋषि गौतम तथा अहिल्या के पुत्र गौतम शतानन्द से प्रायः हम सभी परिचित हैं। इनके द्वारा प्रणीत धर्मशास्त्र का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'गौतम स्मृति' है, जो गद्य में लिखा गया है। ''इसके विषयों का विभाजन अध्यायों में नहीं हैं। 'राजधर्मवर्णनम् शीर्षक से एक छोटे से गद्यावतरण में राजा के व्यवहार का संक्षिप्त वर्णन इसमें किया गया है।''[93]

स्मृतियों का महत्व

स्मृतियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इनका जीवन में अत्यधिक महत्व है। स्मृतियों में जिन विषयों को वर्णित किया गया है इनमें अधिकतर विषय वर्तमान समय में भी मानव जीवन के लिए महत्वपूर्ण हैं। जिस प्रकार दीपक प्रकाशित करने का कार्य करता है उसी प्रकार स्मृतियां हमारे अन्धकार जीवन में प्रकाश का कार्य करती हैं । स्मृतियां मानव को विकास की ओर अग्रसर करती हैं। स्मृतियां केवल मानव का ही विकास नहीं करतीं, वह हमारे समाज की व्यवस्था को भी सुव्यवस्थिति करती हैं।

वर्तमान काल में समाज में फैली हुई बुराइयों एवं कुरीतियों को दूर करने का समाधान स्मृतियों में दिया गया है । स्मृतियों में व्यवहाराध्याय का प्रतिपादन करके राजधर्म,राज्यव्यवस्था एवं दण्ड व्यवस्था का प्रतिपादन किया गया है । जो देश को एक अच्छी शासन व्यवस्था प्रदान करती है। स्मृतियों में आचार को मुख्य रूप से महत्व दिया गया है । आचारवान् मनुष्य ही अपने जीवन एवं समाज को उन्नति प्रदान कर सकता है।

वेदों पर आधारित होते हुए भी स्मृतियों में समकालीन सामाजिक सदाचारों तथा आचार व्यवहारों के नियमों के संकलन का प्रयास किया। उदाहरणार्थ–कलिवर्ज अट्ठावन निषेधों की सूची वैदिक विचारों का अपवाद प्रस्तुत करती है। ऐसी स्थिति में श्रुति, स्मृति–विरोध की स्थिति स्वभाविक है। मीमासकों ने श्रुति का विषय धर्म, स्मृति विरोध की स्थिति में श्रुति को सर्वमान्य वरीयता दी है। उनके अनुसार श्रुति का विषय धर्म, जबकि स्मृति के विषय अर्थ एवं काम है। अतः स्मृतियाँ उनकी दृष्टि में वेदों की अपेक्षा अप्रामाणिक, किन्तु मीमांसकों ने अपने–अपने मन्तव्यों में धर्म को मात्र संकुचित रूप में त्रतीय विधि से ही सम्बद्ध किया, जबकि धर्म के व्यापक अर्थ को ग्रहण करने पर स्मुतियाँ विशेषतः मनु एवं याज्ञवल्क्य स्मृति व्यक्ति एवं समस्त समाज के व्यावहारिक धर्म का सुदृढ़ आधार बनी। परिणामतः सम्पूर्ण धर्मशास्त्र साहित्य में व्यवहारिक दृष्टि से स्मृतियों का अधिक महत्वपूर्ण स्थान है।

पाश्चात्य विद्वान् मैन के मतानुसार– ''श्रुति का कोई वैधानिक महत्व नहीं है। विधान में स्मृतियाँ ही मान्य है।'' सुप्रसिद्ध विद्वान् जौली भी मानते हैं कि ''श्रुतियाँ विधि की अपेक्षा आचार के लिए अधिक महत्वपूर्ण है। समाज को परम्परा रीति–रिवाज, आचार, व्यवहार

एवं सदाचार को संहितावद्ध करने में स्मृतियों में श्रुति की परम्परा का समन्वय करने का प्रयास किया है।''[94]

हमारे भारतीय चिन्तकों ने चरित्र तथा लोकाचार का धर्मशास्त्र के साथ विरोध पाने पर धर्मशास्त्र को ही प्रमाण स्वरूप मानकर स्मृतियों की महत्ता प्रतिपादित की है। मनु और याज्ञवल्क्य दोनों ने धर्म, अर्थ, तथा काम तीनों पुरूषार्थों का समान महत्व दिया है।

''धर्मार्थाबुध्यते श्रेयः कामार्थो धर्म एव च,

अर्थ एवेह वा श्रेयस्त्रिवर्ग इति तुस्थिति।।''[95]

साथ ही मनु ने स्थानीय सदाचार एवं सार्वभौम विधि को ही समान महत्ता प्रदान की है। अतः समस्त धर्मशास्त्र साहित्य में निर्विवाद रूप से स्मृतियों में विशेषतः मनु एवं याज्ञवल्क्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

धर्मशास्त्र सम्बन्धी विविध ग्रन्थों में मानव ''धर्मशास्त्र अथवा मनुस्मृति अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं सबसे प्रमुख तथा लोकप्रिय है। इस कृति को मनु की रचना बताया जाता है, किन्तु अपने वर्तमान परिवर्धित रूप में यह भृगु की रचना बतायी जाती है। पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रतिपादित कतिपय उल्लेखों से मनुस्मृति की प्राचीनता एवं प्रमाणिकता प्रायः प्रतिपादित हुयी है। व्युहलर की अवधारणा है कि ''वर्तमान मानव धर्मशास्त्र अथवा मनुस्मृति मानव सूत्रकरण नाम से अवधीयमान सूत्रग्रन्थों की विद्या के किसी मौलिक ग्रन्थ पर आधृत पद्यवद्ध रचना है। मानव सूत्रकरण कृष्ण यजुर्वेद संस्करण पर प्रवर्तित मैत्रायणी शाखा का एक उपविभाग है। स्वयं मानव धर्मशास्त्र अपना मनुस्मृति का कर्तित्व ब्रह्म से सम्बद्ध किया गया है। ब्रह्मा से ही वह मनु तथा भृगु के द्वारा मनुष्यों तक पहुँची है। नारदस्मृति में मनु विरचित 1,00,000 पद्यों की एक स्मृति का उल्लेख हुआ है। जिसक पद्यों को घटाकर नारद ने 12,000 मार्कण्डेय ने 8,000 और भृगु के पुत्र सुमति ने 4,000 श्लोक कर दिये। इस विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि किसी मौलिक सूत्र के कितने ही संस्करण प्रति संस्करण होते रहे होंगे। ''इसी कारण सम्भवतः मनुस्मृति में धर्मशास्त्र विषयक कुछ विरोधी तत्व का भी समावेश मिलता है।''[96] धर्मशास्त्र साहित्य में विधि के क्षेत्र में मनु सर्वप्राचीन प्रमाण भूत आचार्य हैं। मनु भी अनेक हुये हैं। बृद्ध मनु, और बृहद् मनु के उल्लेख प्राप्त होते है। मनुस्मृति के रचनाकार मनु की प्राचीनता का सर्वाधिक प्रमाण प्राप्त होते हैं। यास्क के निरूक्त तथा महाभारत,(महाभारत ,मानव धर्म शास्त्र, मनु का उल्लेख), कालीदास कृत रघुवंश, (रघु0 ,प्रथम एवं चतुदर्श सर्ग) ,शूद्रक,मृच्छ कटिक, (नवम् अंक) आदि। प्राचीन साहित्य ग्रन्थों में मनु का उल्लेख मिलता है। कहा जाता है कि मनुस्मृति के वर्तमान पाठ में अन्य तीन वर्णों पर ब्राह्मणों के वर्चस्व के सम्बन्ध में अनेक निर्देश उपलब्ध होते हैं। अतः अनेक विद्वानों सम्पादक[97], डॉ0 कृष्णकान्त त्रिपाठी[99], की परिकल्पना है कि मनुस्मृति की रचना उस काल में हुयी थी जब भारत वर्ष में ब्राह्मण राजाओं का एक छत्र शासन था तथा असली शक्ति और सत्ता उनके हाथ मे थी। भारतीय इतिहास में यह काल शुंगकाल से लेकर प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व के भारत में काव्य राजाओं के लगभग अर्द्ध शताब्दी तक के शासन की अवधि से सम्बन्धित किया जा सकता है। अतः ''मनुस्मृति का रचनाकाल प्रथम शताब्दी ईसवी से 300 ई0पू0 निर्धारित किया जा सकता है।''[99]

मनुस्मृति की रचनाकाल की यह प्राचीनता इस तथ्य से भी पुष्ट होती है कि इसके प्राप्त पाठ में बारह अध्यायों के अन्तर्गत 2684 श्लोकों पर वर्णाश्रय धर्म, राजधर्म व्यवहारिक एवं अपराध विषयक प्रकरणों पर व शताब्दी ई0 (825 से 900 ई0 तक) मेधा तिथि, 12 वीं शताब्दी कुल्लूक भट्ट के अतिरिक्त गोविन्दराज नारायण, राघवानन्द तथा नन्दन अधिकारी आचार्यो ने टीकायें लिखी हैं, जिनमें मेधा तिथि की टीका

अत्यन्त प्राचीन एवं प्रसिद्ध तथा धर्मशास्त्र साहित्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

मनुस्मृति की पुरातनकाल से भारतीय जनजीवन में व्याप्त लोकप्रियता एवं महत्ता से प्रभावित होकर ''बर्मा, श्याम जावा (हिन्देशिया) आदि देशों में भी इसका प्रचार प्रसार हुआ और इसकी उपादेयता को संसार भर में स्वीकार किया गया है।''[100]

धर्मशास्त्र साहित्य में मनुस्मृति के बाद दूसरी महत्वपूर्ण स्मृति याज्ञवल्क्य स्मृति है, जिसमें आचार्य, व्यवहार, और प्रायश्चित के सम्बन्ध में एक एक करके कुल तीन अध्याय हैं। अन्य स्मृतियों की भांति याज्ञवल्क्य के भी समय निर्धारण की समस्या धर्मशास्त्र जगत में उलझी(2) पड़ी है। प्रायः विद्वद्वर्ग की दृष्टि इसके रचनाकाल को निश्चित करने के लिये ऐतिहासिक शुग शासनकाल (ई0 की प्रथम–द्वितीय शताब्दी)(3) के आस–पास ही ठहरती है, जिसमें प्रायः स्मृति साहित्य की रचना हुई। याज्ञवल्क्य स्मृति का निर्माण काल निर्धारण करने में अधोलिखित प्रमाण प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

अन्तः साक्ष्य

(4)

1. याज्ञवल्क्य स्मृति में तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार ही नक्षत्रों का उल्लेख है। तथा उनका क्रय कृत्तिका में भरणी तक तैत्ति0 ब्राह्मण जैसा निर्दिष्ट किया गया है।
2. याज्ञवल्क्य स्मृति में (राशिमाला सम्बन्धी चिन्हों से) का उल्लेख नहीं है।
3. याज्ञवल्क्य स्मृति के 'सुष्ठे दून्दौ' की टीकाकार विश्वरूप ने जो व्याख्या की है, वह वैदिक काल के संदर्भ से शून्य है।
4. याज्ञवल्क्य स्मृति में पतिवस्त्रधारी लोगों की दृष्टि को An evil men रूप में माना गया है।''[101]

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर याज्ञवल्क्य स्मृति का समय ई0 100 के बाद ही प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त बृद्ध याज्ञवल्क्य ,योग याज्ञवल्क्य तथा बृहद् याज्ञ0 का भी नाम विद्यमान है। योग याज्ञवल्क्य 800 ई0 के बहुत पूर्व विद्यमान थे। क्योंकि श्री वाचस्पति मिश्र (800 ए0) ने योग याज्ञ0 का एक आधा छन्द उद्धृत किया है तथा अपरार्क (200–700 ए0डी0) ने भी उसी से उद्धरण किया है।

बाह्य प्रमाण

(1) लंकावतार सूत्र की गाथा (814–816) में याज्ञवल्क्य का उल्लेख किया गया है।

व्याख्याकार विश्वरूप (700–1000 ए0डी0) के मध्य के किसी समय में इस स्मृति की रचना के कई शताब्दियों बाद हुआ प्रतीत होता है।

डॉ0 जैकॉबी के सिद्वान्त के अनुसार– गृह नक्षत्रों के पश्चात् सप्ताह के दिनों का नामकरण प्रथम ग्रीक लोगों ने प्रचलित किया, तत्पश्चात उन्हीं से भारतीयों ने ग्रहण किया। इस प्रकार याज्ञवल्क्य स्मृति का समय दूसरी शती के बाद ही वे निर्धारित करते है।

डॉ0 जॉली के विचार से चूंकि याज्ञवल्क्य ग्रीक से पूर्ण परिचित प्रतीत होते हैं, अतः अपनी इसी कल्पना के आधार पर वे याज्ञवल्क्य स्मृति का काल 400 ए0डी0 निर्धारित करते हैं। उपर्युक्त बाह्य तथ्यों में से पाश्चात्य विद्वानों की धारणायें एवं सिद्धान्त भ्रम पूर्ण है। जो पूर्वाग्रही दृष्टिकोण से मुक्त नहीं है। भारतीय ज्योतिषशास्त्र ईसा की चतुर्थ शती के पूर्व ही यहाँ बहुत विकसित हो चुका था। डॉ0 जॉली तथा जैकॉबी के ''सिद्धान्त के भ्रमपूर्ण आधार पर याज्ञवल्क्य स्मृति का वास्तविक रचनाकार नहीं माना जा सकता है।''[102]

शुंग–शासनकाल तक प्रायः सभी स्मृतियों की रचना हो चुकी थी। महामहोपाध्याय डॉ0 पी0वी0 काणे भी इसी समय के आसपास ई0 की

प्रथम शताब्दियों या उसके कुछ पूर्व 300 ई0पू0 तक याज्ञवल्क्य स्मृति का रचनाकाल मानते हुये लिखते है– "There is nothing to prevent is from hiding that extant smrit was composed during the first two conturies of the chirstian ere of even a little earlier."

(History of Dharmshastra, P.V. Kane)

अतः याज्ञवल्क्य स्मृति के निर्माण काल की सम्भावना 100 ई0 पूर्व से लेकर 300 ई0 तक में के मध्य की जानी चाहिये। मनुस्मृति जिसका रचनाकाल लगभग 200 ई0 के मध्य माना जाता है, से याज्ञवल्क्य स्मृति की Phraseologty प्रायः मिलती जुलती है तथा बहुत से सिद्वान्तों के प्रतिपादन में यह मनुस्मृति से प्रभूत मात्रा में प्रभावित जान पड़ती है। अतः उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुये डॉ0 कैलाशनाथ द्विवेदी के मतानुसार– ''याज्ञवल्क्य 200 ई0पू0 के बाद 300 ई0 तक किसी समय में अपना वर्तमान स्वरूप ग्रहण कर चुके होंगे।''[103]

मनुस्मृति की भाँति याज्ञवल्क्य स्मृति की महत्ता, प्राचीनता एवं लोकजीवन में उपादेयता इस तथ्य से पुष्ट होती है कि इस पर याज्ञवल्क्य मनुस्मृति के समान अनेक प्राचीन टीकायें आचार्यो ने लिखी। इन प्राचीन टीकाओं में आठवीं शताब्दी के आचार्य विश्वरूप की बालक्रीडा कल्याण के चालुक्य राजा विक्रमादित्य षष्ट के सभा पण्डित एवं विद्वान् आचार्य विज्ञानेश्वर 120 ई0 की मिताक्षरा, और अपरार्क (12 वीं शताब्दी का प्रथमार्द्ध) की आपारार्क की याज्ञवल्क्य धर्मशास्त्र निबन्ध टीका विख्यात है। इनमें भी आचार्य विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा टीकासर्वाधिक प्रसिद्ध है, जो स्वयं में एक मौलिक रचना मानी जाती है। इस पर बैद्यनाथ पाय गुंडे (750 ई0) के पुत्र बालभट्ट (बालकृष्ण) ने बालम्भट्टीय या लक्ष्मी बैख्यान नाम की टीकालिखी है। कुछ विद्वान् इसे बैद्यनाथ की ही कृति मानते है। इसमें स्त्रियों के सम्पत्ति अधिकार पर अधिक बल दिया गया है।

मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्य स्मृति की तुलनात्मक रूप से निम्न विशेषताएं पाई जाती हैं।

याज्ञवल्क्य और मनु दोनों स्मृतियों में अनेक समान एवं असमान तथ्यों के दर्शन होते हैं, जिन्हें हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं। याज्ञवल्क्य स्मृति तथा मनुस्मृति दोनों की Phraseology में घनिष्ट समानता दृष्टिगोचर होती है। याज्ञवल्क्य स्मृति में मनु स्मृति के ही सिद्धान्तों के स्वरूप को प्रायः संकुचित (संक्षेपीकृत) करने का प्रयास किया गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति में वे स्वयं के मौलिक सिद्धान्त नहीं है– वह मनुस्मृति से भिन्न नहीं है।

याज्ञवल्क्य स्मृति सृष्टि उत्पत्ति के सम्बन्धों में अपना कोई दृष्टिकोण प्रस्तुत नहीं करती, जबकि मनुस्मृति में सृष्टि के उद्भव पर भी विचार व्यक्त किया गया है। सामान्यतः मनुस्मृति ब्राह्मण को शूद्र लड़की से भी विवाह करने की अनुमति देती है, जबकि याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार ब्राह्मण का शूद्रा से विवाह करना अप्रशंसनीय होने से वर्जित किया गया है। मनु स्मृति नियोग, क्रिया की निन्दा करती है, जबकि याज्ञवल्क्य स्मृति नहीं है। इसी प्रकार जुआ खेलने की मनुस्मृति में निन्दा की गयी है, याज्ञ0 स्मृति में नहीं। याज्ञवल्क्य स्मृति, विनायक शान्ति (जो मानव गृह्य रूप से ग्रहण किया है) गृहशान्ति तथा (जल, अग्नि से शुद्ध होने की) कठिन परीक्षाओं को समाविष्ट किये हैं, जबकि ''मनुस्मृति प्रथम दो (विनायक शान्ति गृहशांति) का उल्लेख नहीं करती है। उसमें तो केवल दो कठिन परीक्षाओं का उल्लेख है। याज्ञवल्क्य स्मृति की भाषा–शैली तथा नियमों की क्रमबद्धता मनुस्मृति की अपेक्षा अधिक सुन्दर तथा उपयुक्त है।''[104]

यद्यपि दोनों स्मृतियों में कुछ साम्य होते हुए भी अनेक (तथ्यों) दृष्टिकोणों के अनुसार विभिन्नता दृष्टिगोचर होती हैं। जिसमें याज्ञवल्क्य स्मृति, मनु–स्मृति की अपेक्षा अधिक विकसित

अवस्था को व्यक्त करती है। जैसा कि – म0म उपाध्याय डॉ0 पी0वी0 काणे ने भी अपना मत स्पष्ट किया है।

"Manu and yagn, differ on several points and yagn, represents a more advanced state of thought than Manu."

(History of Dharmsastra)

इस प्रकार संस्कृत के धर्म शास्त्र साहित्य में महत्वपूर्ण इन दोनों स्मृतियों में अनेक दृष्टियों से विवेच्य विषयगत समानता–असमानता होते हुए भी अर्वाचीन आदर्श सामाजिक जीवन पद्धति निर्धारित करने की व्यापक दिशा में इन दोनों स्मृतियों की उपादेयता एवं महत्ता निर्विवाद एवं असंदिग्ध ही है। अतः वर्तमान विविध सामाजिक सन्दर्भो विशेषतः विद्यमान सामाजिक अपराध एवं तत्सम्बन्धित दण्ड विधान का अनुसंन्धान पूर्ण तुलनात्मक अध्ययन इन दोनों स्मृतियों के आधार पर करना अत्यन्त समीचीन हैं।

मनु का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

मनु के महत्त्व को प्रतिपादित करने में बाड्.मय प्रारम्भ से ही मुखर रहा है। सर्वप्रथम उल्लेखनीय हैं। वेद। वेदों में मनु का सादर उल्लेख है ऋग्वेद में मनु को पिता के रूप में स्वीकार किया गया है। वैदिक कवि ने मनु के मार्ग से च्युत न होने के लिए स्तुति की है। ''मा नः पथः पित्र्यान्मानवादधि दूरं नैष्ट परायतः।''[105]

ऋग्वेद में मनु के यज्ञ का संकेत करते हुए ''रूद्र की स्तुति भी की गई है।''[106] यही नहीं ऋग्वेद में मनु को मानव का पितामह बताते हुए कहा गया है कि मनु ने ही सर्वप्रथम यज्ञ किया तदनन्तर यह सृष्टि प्रारम्भ हुई। इस आधार पर तो ''मनु का समय सृष्टि का प्रारम्भ काल हो जाता है।''[107] मनु भी अनेक हुए– स्वायम्भुवमनु, वैवस्वतमनु और प्राचेतसममनु आदि। इनमें से किसकी कृति मनुस्मृति है यह संदिग्ध है। महाभारत में भी मनु का उल्लेख है। मनु मानव जाति के पूर्वज थे। उनकी ही रचना मनुस्मृति को माने तो वे आदिकाल के नहीं माने जायेगें। नारदस्मृति में लिखा है कि एक लाख श्लोकों का एक धर्मशास्त्र मनु ने लिखा। मनु के धर्मशास्त्र को पहले नारद ने पढ़ा एवं इसकी 12 हजार श्लोकों में संक्षिप्त कर मार्कण्डेय को पढ़ाया । ''मार्कण्डेय ने उसका संक्षेपीकरण कर सुमतिभार्गव को दिया और भार्गव ने 4000 श्लोकों में उसको संक्षित कर ऋषियों को सुनाया वर्तमान मनुस्मृति भृगु का व्याख्यान है।''[108] डॉ0 काणे नारद की उक्ति को भ्रामक बताते हैं। यास्क ने अपने निरूक्त में व्यवहारशास्त्र के रचयिता मनु का उल्लेख किया है। शतपथब्राह्मण में भी मनु और शतरूपा की कहानी आई है। मनुस्मृति के रचयिता यही मनु थे या कोई और यह कहना कठिन है। मनुस्मृति को प्राचीनतम धर्मशास्त्र ग्रन्थ माना जाता है। मनु को शिष्य परम्परा में भृगु भी हैं। उन्होंने मनु के उपदेशों का संकलन किया जिसका अन्य ऋषियों ने अध्ययन किया। मुनियों ने भृगु से धर्मसंबंधी प्रश्न पूछे और उन्होनें प्राचुतर में इस स्मृति की रचना की जो मनु की उक्तियों पर आधारित है। महाभारतकाल में जो धर्मशास्त्र था यह स्वर्मभुवमनु रचित बताया जाता है। सम्भवतः वर्तमान मनुस्मृति उसी का संक्षिप्त रूप है। प्राचीन टीकाकारों एवं धर्मशास्त्रकारों ने भृगु की उक्तियों को अपनी कृतियों में उद्धत किया है।

वेदों के अतिरिक्त संहिताओं में भी मनु का उल्लेख किया गया है तैत्तिरीय संहिता एवं ताण्डय महाब्राह्मण में मनु के बचनों को औषधि के समान माना गया है।–

''यद्वै किं च मनुरवदत्तद् भेषजम्।''[109]

''मनुर्वै यत्किंचावदत्तद् भैषजतायै।''[110]

मनु को प्रजापति माना गया है तभी यज्ञ में मनु को भाग मिला है।[111] महाभारत में भी मनु कोक

स्वायंमुव मनु की संज्ञा दी गई है। तथा यह भी कहा गया है कि मनु को ब्रह्मा ने एक लाख श्लोको में धर्म का उपदेश दिया। बृहस्पति स्मृति में मनुस्मृति का उल्लेख इस प्रकार प्राप्त होता है–

''वेदार्थोपनिबद्धत्वात् प्राधान्यं हि मनोस्मृते।''[112]

मनु के विषय में मत्स्यपुराण में एक कथा का उल्लेख करते हुए कहा गया है। कि जलप्लावन के विषय में स्वयं भगवान नारायण ने मनु से कहा, पर्वत तथा वन सहित सम्पूर्ण धरती शीध्र ही जलमग्न हो जायेगी। मैनें वेदों की रक्षा के लिए यह नौका निर्मित की है। आप जसयुज, अण्डज, स्वेदज आदि जीवों को इस नौका में रखकर उनकी रक्षा करना। आपको सृष्टि–संरक्षण का यश प्राप्त होगा। इसके फलप्राप्ति के उपरान्त आप कलियुग के आरम्भ में देवों को भी पूज्य होकर ''मन्दन्तर के अधिपति वनेगें।''[113] कुरानपाक में भी जलप्लावन की ऐसी ही कथा का समर्थन करते हुए कहा गया है कि तूफान के आ जाने के कारण हजरत नहु ने तूफान के समाप्त होने तक अपनी नौका में सभी जीवों को रखकर उनकी रक्षा की थी। ''इस घटना के पश्चात हजरत नहु को सम्पूर्ण मानव जाति का पिता माना गया।[114] ''जलप्लवन की यह कथा बाइबिल, घाल्डिया एवं अन्य देशों के साहित्य में भी पाई जाती है।''[115]

मनु के विषय में संस्कृत साहित्य में अधिक विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। मनु के विषय में यह भी कहा गया है कि ''परम्परानुसार मनु रूप से वैवस्वत, स्वाम्भुव एवं सावर्णि से सम्बन्धित है। मनु सूर्य के पुत्र थे। इसी कारण यह वैयस्वत हुए। स्वयं उत्पन्न होने से स्वयंम्भुव कहलाये।''[116] मनु एक श्रेष्ठ कानूनी वक्ता थे सर्वप्रथम कानून वनाने वाले का नाम मनु से मिलता–जुलता ही माना गया है। इसी सम्बन्ध में इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध भाषा तत्वविद् सर विलियम जोन्स ने अनेक भाषाओं का अध्ययन करके लिखा है– हम इस बात को स्वीकार किये विना नहीं रह सकते है कि ग्रीक (यूनानी) भाषाके माईनोस मिनेयुस' आदि शब्द के ही विकृत रूप है। इन्हौने इस बाता का विवचन करते हुए कहा है कि हम इस बात का निर्णय करने का कार्य दूसरे लोगों के लिए छोड़ देते है। कि क्या ब्रह्मा का पुत्र वही है जिसे क्रीट टापू वाले जुपिटर (देवराज) के पुत्र माइनोस के नाम से पुकारते है। और जो मिश्र के देवता हर्मीज से धर्मशास्त्र सीख कर मिश्र का प्रथम राजा बना था? पर हम बादशाद शाहजहां के पुत्र पुत्र दाराशिकोह के इस कथन को अनुचित नही कह सकते है। कि ''ब्राह्मणों का मनु वही है जो मनुष्य जाति का पूर्वज समझा जाता है और जिसको याहूदी, ईसाई और मुसलमान आदम के नाम से पुकारते हैं।''[117]

अंग्रेजी का man शब्द भी ''मनु से ही सम्बन्धित माना गया है।''[118]

यास्क ने भी मनु को उद्धृत किया है।[119] रघुवंश में कालिदास ने मनु का उल्लेख किया है।[120] कामसूत्र में भी मनु का उल्लेख किया गया है।[121] बाह्मण के पाप करने पर जो दण्ड मनुस्मृति में दिया है उसी का समर्थन मृच्छकटिक में भी दिया गया है[122] विदेशों में भी मनु चर्चा की गई है। कम्बोडिया के लोग आज भी स्वयं को मनु का वंशज मानते हैं।[123]

मनु शब्द पर विचार करते हुए लिखा है कि आदम के वाचक जितने भी मानव, मनुष्य, मानुष आदि नाम मिलते है। वे मनु के नाम से ही जुड़ कर बने है। जिसका अर्थ है– मनु के पुत्र या वंशज। इसी कारण भारतीय साहित्य में मानव्या : प्रजाः कहा गया है। पी वी काणे ने मनु के विषय में कहा है कि ''मनु को अपने पूर्व के साहित्य का पर्याप्त ज्ञान था। उन्होंने तीन वेदों के नाम लिए है। और अर्थवेद को अर्थवाग्रिसी श्रुति कहा गया हैं उन्होंने कचित अपने अन्य कहकर अन्य लेखकों के मत को भी लिया है।''[124] सर फ्लिण्डर्स पैट्री ने 1893 में ''मिस्र में प्रचलित

मीन या मैना शब्द के विश्लेषण से मनु का आभास कराया है।''[125] इसी प्रकार न्यूजीलैण्ड में ''मौरी जातियों में मानव शब्द का प्रयोग है।[126] कुतरा एवं गानवा जैसी प्राचीन हिन्देशियाई पुस्तके मनु के आधार पर लिखी गयी।''[127]

राजर्षि मनु में लिखा है कि ''मनु ब्राह्मण नहीं थे, वह क्षत्रिय थे उन्हें प्राचीन भारत का प्रथम सम्राट और विधि निर्माता माना जाता है।''[128]

मनुस्मृति का रचनाकाल

मनुस्मृति के रचना काल के उचित कालनिर्धारण में गतैक्य नहीं है। मनुस्मृति का कालनिर्धारण अन्तः एवं वाहा साक्ष्यों पर आश्रित है। कतिपय विद्वान मनुसमृति को महाभारत से प्राचीन मानते है। तो कतिपय मनुस्मृति को महाभारत के पश्चात की रचना स्वीकार करते है। परम्परावादी भारतीय विद्वानों ने मनुस्मृति को वेद सदृश प्रमाण माना है और इसके लिए वे वेद को ही उद्घत करते है। ''वेद में मनु के विधान का हि विवरण नहीं है उसके पालन का उल्लेख भी है।''[129]

जैमिनीकसूत्र के भाष्यकार शबरस्वामी ने भी मनुस्मृति का उल्लेख किया है इनका ''समय 500 ई0 से पूर्व ही माना जा सकता है।''[130] बृहस्पति ने भी मनुस्मृति की प्रशंसा है। बृहस्पति का काल भी 500 ई0 ही माना गया है। शंकराचार्य ने मनुस्मृति का वेदान्तसूत्र के भाष्य पर अनेक बार उल्लेख किया है ''जिसका समय 900 ई0 माना जाता है।''[131] मनुस्मृति का अंग्रेजी अनुवाद भी हो चुका है। इन अंग्रेजी अनुवादकों में डॉ0 बुहलर का अनुवाद ही प्रसिद्ध है। बुहलर ने कठिन शोध के पश्चात् यह बताया है कि महाभारत के बारहवे एवं तेरहवे पर्वो में जिस मानवधर्मशास्त्र की चर्चा हुई है वह मनुस्मृति से ही सम्बन्धित है। पी0वी0काणे के मत में ''महाभारत के बहुत से श्लोक मनुस्मृति से मिलते है अतः मनुस्मृति महाभारत से पूर्व की रचना है।''[132] महाभरत में प्राचेतस का एक वचन उद्धृत है जो वर्तमान मनुस्मृति में ज्यों का त्यों प्राप्त हो रहा है। ''यासा नादवते शुल्क ज्ञातमो न स विक्रयः। अर्हणं तस्कुमारिणामानृशंत्यं न केवलम्।।''[133]

श्री मंडलिक ''मनुस्मृति को महाभारत के बाद की रचना तो हापकिन्स तथा बुहलर महाभारत से पूर्व की रचना मानते हैं।''[134] श्री काणे के मत में ई0 पूर्व चौथी शताब्दी के बहुत पूर्व स्वयं मनुकाल एक धर्मशास्त्र ग्रन्था था, जो सम्भवत श्लोकवद्ध था उसी प्रकार सम्भवतः प्राचेतस मनु का राजधर्म नामक ग्रंथ का भी उसी समय अस्तित्व था। अतः श्री काणे के अनुसार ''मनुस्मृति का रचनाकाल ई0पू0 दूसरी शताब्दी तथा ईशा के बाद दूसरी शताब्दी के बीच सम्भावित है।''[135] डॉ0 बुहलर ने मनुस्मृति का रचनाकाल'' 200 ई0 पूर्व से 100 ई0 के मध्य निर्धारित किया है।''[136] डॉ0 जायसवाल ने भी ''मनुस्मृति का काल 150–120 ई0 पूर्व के मध्य माना है।''[137]

वर्तमान मनुस्मृति याज्ञवल्क्यस्मृति से पूर्व की रचना है। मनुस्मृति में न्याय सम्बन्धी विवरण कम है और याज्ञवल्क्यस्मृति में इससे अधिक विवरण है। ''याज्ञवल्क्य स्मृति का समय तीसरी शताब्दी है। मनु इससे बहुत पहले के है।[138]

डॉ0 कौशल के अनुसार मनु के विचार बृहदारण्यक उपनिषद में भी प्राप्त होते है। तदनुसार पातंजलि ने धर्मसूत्रों का तो उल्लेख किया है किन्तु मनुस्मृति का नहीं। मनुस्मृति की रचना उस समय तक नहीं हुई थी। पातंजलि का काल 188 ई0 पूर्व है। पुष्यमित्र के राजसूय का यही समय है। अतः मनुस्मृति की रचना महाभाष्य के बाद की गई।''[139] एलपिस्तो के मत में ''मनुस्मृति की रचना 900 ईसा पूर्व में हुई, क्योंकि वह उस काल की सामाजिक स्थिति का स्पष्ट वर्णन करती है।''[140] श्री उमेशचन्द्र ने मनुस्मृति को सबसे प्राचीन बताया है तथा इसका

''रचनाकाल ईसा से कई वर्षों पहले रचा गया माना है।''[141]

मनुस्मृति को समस्त स्मृतियों का मूल माना गया है क्योंकि मनुस्मृति सभी स्मृतियों में सबसे अधिक प्राचीन है। सभी धर्मशास्त्रों ने मनुस्मृति को आधार मानकर ही स्मृतियों की रचना की है समस्त स्मृतियों में अधिकतर मनु के वचनों का उल्लेख मिलता है। मनु ने मनुस्मृति में भारत से बाहर की जातियों का उल्लेख भी किया है ।

महर्षि याज्ञवल्क्य का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

वैदिक ऋषि परम्परा में याज्ञवल्क्य का नाम आता है। इन्हें एक प्राचीन ऋषि, दार्शनिक एवं योगीश्वर के रूप में स्मरण किया गया है। शुक्ल यजुर्वेद के उद्घोषक के रूप में इनका नाम आता है। वृहदारण्यकोपनिषद् में यावल्क्य की दो पत्नियों –''कात्यानी और गार्गी का नाम उल्लिखित है।''[142] शतपथ ब्राह्मण, भागवत् तथा महाभारत के अनुसार इनके ''गुरू का नाम वैशम्पायन था।''[143] कभी गुरू–शिष्य में सम्बन्ध –विच्छेद हुआ और सूर्योपासना के द्वारा याज्ञवल्क्य को ''शुक्ल यजुर्वेद, शतपथादि का श्रुतिप्रकाश मिला।''[144] वृहदारण्यक उपनिषद् में विदेह जनक के गुरू के रूप में भी याज्ञवल्क्य का वर्णन विस्तृत रूप में पाया जाता है। वृहदारण्यक के तृतीय अध्याय में यह बतलाया गया है कि विदेह जनक ने अपने यज्ञ में सभी प्रदेशों के ब्रह्मज्ञानियों को आमन्त्रित किया था। सभी के उपस्थित होने पर जनक ने उनमें से सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण को चयन करने की दृष्टि से अपना मत प्रकट किया कि ''ब्राह्मणा भगवन्तो यो वो ब्राणः स स्ता गा उदजतामिति''–अर्थात् आदरणीय ब्राह्मणों! आपमें से जो श्रेष्ठ ब्राह्मण हो, ''वह मेरी इन एक हजार गायों को ले जा सकता है।''[145] विदेह जनक की यह बात सुनकर सभी मौन हो गये थे। कुछ समय पश्चात् याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्यों से उन गायों को ले जाने के लिए कहा, इस पर सभी क्रुद्ध हो गये और याज्ञवल्क्य के साथ उन सबों का क्रमशः शास्त्रार्थ (ब्रह्म के विषय में) हुआ। ''इस शास्त्रार्थ का स्वरूप वस्तुतः 'जल्प' था।''[146] जैसा कि जल्प के लक्षण से ही स्पष्ट है, इस कथा में उचित–अनुचित का विवेक सा नहीं रहता है। याज्ञवल्क्य भी इस अपकर्ष से रहित नहीं रह सके। ''अस्ति हि याज्ञवल्क्यस्य..... भुयान् विद्यामदः। तैः सर्वैरपि विजिगीषुकथा–याम्प्रवृत्वात्।''[147] उन्हें भी समय–समय पर त्रास, प्रदर्शन, शाप–दान आदि करना पड़ा। इन्हीं अपकर्षों के कारण विद्यारण्य स्वामी ने अपने जीवन्मुक्ति विवेक में याज्ञवल्क्य के विषय में यह बात कही है – ''**तस्मात् किम्बहुना? ब्रह्मविदां याज्ञवल्क्यादीनामस्त्येव मलिन वासनाऽनुवृत्तिः।**''[148]

बृहदारण्यक उपनिषद् के तृतीय एवं चतुर्थ अध्याय में ''विदेयराज जनक की अध्यात्म सभा के वरिष्ठ सदस्य के रूप में याज्ञवल्क्य का दर्शन होता है। वहाँ इनके ब्रह्मज्ञान के प्रवचन द्रष्टव्य हैं।''[149] शतपथ ब्राह्मण में भी विदेहराज की शंकाओं का समाधान इनका देखने योग्य है। ये योगी थे और योगशास्त्र का प्रवचन किया था, पर वह ग्रन्थ आज प्राप्त नहीं हैं इनके पिता महर्षि एवं गुरू वैशम्पायन तथा परमगुरू व्यास थे। याज्ञवल्क्य को गुरू से विवाद हो गया था और गुरू ने अधीत विद्या को लौटाने का आदेश दिया था। याज्ञवल्क्य ने उनसे प्राप्त वेदमन्त्रों को अंगारों के रूप में वमन कर दिया और उन अंगारों को वैशम्पायन के शिष्य तित्तिरि बन कर निगल गये। वे यजुर्वेद के मन्त्र कृष्ण यजुर्वेद से और वह शाखा तैत्तरीय कहलाने लगी। वेदहीन होकर याज्ञवल्क्य ने सूर्य से वेद का अध्ययन किया और वे मन्त्र शुक्ल –यजुर्वेद कहलाने लगे और वाजसनि=सूर्य के शिष्य(वाजसनेय) याज्ञवल्क्य के नाम पर वह वाजसनेयशाखा रूप में प्रसिद्ध हुआ। ''जनक की सभा में इनके शास्त्रार्थ में विजय का वर्णन

वृहदारण्यक के आधार पर स्व0 पं. जीवननाथ झा ने 'याज्ञवल्क्य विजयनाटकम्' (दरभंगा–1984 ई0) में किया है।''[150] पाणिनि सूत्र के वार्तिक में कात्यायन ने याज्ञवल्क्य के ब्राह्मणों की चर्चा की है।

याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखा है कि ''वृहदारण्यक का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए जो मैंने सूर्य देवता से पाया है और योग की इच्छा रखने वाले को मेरा रचा हुआ योगशास्त्र जानना चाहिए।''

''ज्ञेयं चारण्यकमहं यदादित्यादवाप्तवान्।

योगशास्त्रं च मत्प्रोक्तं श्रेयं योगमभप्सता।।''[151]

इन बातों से निष्कर्ष यही निकला कि याज्ञवल्क्य स्मृति के लेखक ने याज्ञवल्क्य स्मृति को अधिक महत्व प्रदान किया है, तथा यह स्मृति एक प्राचीन ऋषि एवं योगी द्वारा प्रणीत हैं।

शतपथ ब्राह्मण में ''याज्ञवल्क्य और शाकल्य के शास्त्रार्थ के विवाद का वर्णन किया गया हैं।''[152] जिसमें देवताओं की संख्या के विषय में विचार किया गया है और अन्त में याज्ञवल्क्य के एकेश्वरवाद के सिद्धान्त को स्वीकारा गया है, परन्तु याज्ञवल्क्य अपने प्रतिद्वन्दी शाकल्य को उनकी हठधर्मिता के कारण शीघ्र मृत्यु प्राप्त करने का शाप देते हैं। याज्ञवल्क्य को अनेक यज्ञों का उद्घोषक माना गया है। शतपथ ब्राह्मण के अतिरिक्त याज्ञवल्क्य का नाम किसी अन्य वैदिक ग्रन्थ में नहीं आता। शंखायन आरण्यक में दो स्थानों पर याज्ञवल्क्य का वर्णन है। परन्तु ''संस्कृत के विद्वानों ने उन अंशों को शतपथ ब्राह्मण से उद्धृत माना है।''[153]

याज्ञवल्क्य शुक्ल ,यजुर्वेद, शतपथ ब्राह्मण तथा वृहदारण्यकोपनिषद् के रचयिता थे। इस विषय में प्रायः सन्देह व्यक्त किया गया है। शुक्ल यजुर्वेद की संहिता वाजसनेय संहिता कहलाती है और यह नाम याज्ञवल्क्य की उपाधि वाजसनेय के आधार पर पड़ा है। यदि ''याज्ञवल्क्य इस संहिता के लेखक न भी हों, फिर भी उन्हें संकलनकर्ता मानने में कोई आश्चर्य नहीं है।''[154]

इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण के भी अधिक अंश सीधे याज्ञवल्क्य रचित हैं और शेष अंश को आधिकारिक रूप देने के लिए उनका नाम सम्बद्ध कर दिया गया है, ऐसी सम्भावना की जाती है। अतः जैसा कि जे0 डाउसन ने कहा है, ''यह मानने में कोई आपत्ति नहीं है कि शतपथ ब्राह्मण की रचना उनके अधीक्षण में या उनके शिष्यों द्वारा की गई थी।''[155]

शतपथ ब्राह्मण से सम्बद्ध वृहदारण्यकोपनिषद् में याज्ञवल्क्य एक यज्ञक्रिया के आचार्य की अपेक्षा दार्शनिक के रूप में दिखाई पड़ते हैं। उस उपनिषद् में याज्ञवल्कीय काण्ड का अंश विशेष रूप से उल्लिखित है। जिसमें ''याज्ञवल्क्य की प्रशंसा है और उनके आत्मविषयक दार्शनिक विचारों का संग्रह है।''[156] इस उपनिषद् में याज्ञवल्क्य का जिस प्रकार उल्लेख किया गया है, उससे स्पष्ट है कि यह अकेले याज्ञवल्क्य की रचना न होकर उनके शिष्यों और अनुयायियों द्वारा भी रचित है।

विण्टरनित्स का इस विषय में मत है कि स्वयं ''वृहदारण्यकोपनिषद् में अन्य आचार्यों का उल्लेख है। इसके अलावा याज्ञिक एवं तत्त्व चिंतन विषयक इतने विभिन्न मतों को याज्ञवल्क्य से सम्बद्ध किया गया है कि उन्हें इन सबका उद्घोषक स्वीकारना कठिन लगता है।''[157]

''वृहदारण्यकोपनिषद्'' में याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी को आत्मा के विषय में तथा अमरता के बारे में जो व्याख्यान दिये हैं, वे भारतीय दर्शन में उत्कृष्ट कोटि के परिचायक हैं। इस उपनिषद के तीसरे और चौथे में उत्कृष्ट कोटि के परिचायक हैं। इस उपनिषद के तीसरे और चौथे अध्यायों में प्रायः सभी ब्राह्मणों में याज्ञवल्क्य किसी न किसी आचार्य से दार्शनिक विवेचन करते हुए दिखाई पड़ते हैं। जैसे– ''जनक, अश्वल, आर्तभाग,

कोहल, गार्गी, आरूणि या शाकल्य से। महाभारत में याज्ञवल्क्य युधिष्ठिर के राजसूर्य यज्ञ के अवसर पर उपस्थित दिखाये गये हैं, याज्ञवल्क्य के स्थितिकाल की दृष्टि से यह कुछ विचित्र प्रतीत होता है।''[158]

याज्ञवल्क्य रचित एक योगशास्त्र का उल्लेख कूर्मपुराण में है और विण्टरनित्स का विचार है कि यह याज्ञवल्क्य गीता का निर्देश करता है, जिसमें योग की व्याख्या की गई है। प्रश्न उठता है कि क्या वैदिक परम्परा के ऋषि याज्ञवल्क्य ही प्रस्तुत याज्ञवल्क्य स्मृति के रचयिता हैं? प्रश्न सकारण है। वैदिक ग्रन्थों की भाषा–शैली से स्मृति की भाषा और शैली नितान्त भिन्न है और इनमें समय की दृष्टि से समानता नहीं है और इसी तथ्य को दृष्टिगत करके मिताक्षरा टीका के लेखक विज्ञानेश्वर ने स्पष्ट संकेत किया है कि याज्ञवल्क्य के किसी शिष्य ने धर्मशास्त्र को संक्षिप्त करके वर्तमान रूप प्रदान किया है। परन्तु स्वयं ''याज्ञवल्क्य स्मृति में इस बात को उल्लिखित किया गया है कि इस स्मृति के प्रणेता आरण्यक अर्थात् वृहदारण्यकोपनिषद् के रचयिता हैं और उन्हें सूर्य ने ज्ञान प्रदान किया था। वे योगी थे।''[159]

याज्ञवल्क्य के साथ उस स्मृति का सम्बन्ध सम्भवतः इसे महत्त्व प्रदान करने के लिए जोड़ा गया है। किन्तु एक निर्विवाद सत्य है और वह यह है कि शुक्ल यजुर्वेद की परम्परा से इस स्मृति का सम्बन्ध है।

''वृहदारण्यकोपनिषद् में याज्ञवल्क्य को उद्दालक आरूणि का शिष्य बताया गया है।''[160]

राजा जनक के साथ इनके सम्बन्धों के कारण इन्हें विदेह का निवासी कहते हैं।

शतपथ ब्राह्मण के अन्त में प्रस्तुत[161] आचार्यों की सूची के अनुसार याज्ञवल्क्य का स्थान पैंतालीसवाँ है और उसमें भी उनके गुरू का नाम उद्दालक आरूणि है।

जहाँ तक याज्ञवल्क्य के समय का प्रश्न है, वे परवर्ती संहिताओं और ब्राह्मणों के काल के ऋषि हैं। किसी भी स्थिति में वे पाणिनि के पहले के हैं।

याज्ञवल्क्यस्मृति परिचय

स्मृति साहित्य में याज्ञवल्क्य का स्थान मनुस्मृति के बाद द्वितीय है। कुछ दृष्टियों से तो याज्ञवल्क्य स्मृति का मनुस्मृति की अपेक्षा अधिक व्यवहारिक महत्व है। याज्ञवल्क्य स्मृति मनुस्मृति के बाद की रचना है। यह बात विषयवस्तु के कारण स्पष्ट है ही और भी अनेक विशिष्ट तथ्यों के कारण भी स्पष्ट हैं, क्योंकि गणेश और ग्रहों की पूजा, दान से सम्बद्ध कर्मो का ताम्रपत्र पर लेख और मठों के संगठन का वर्णन आदि इस स्मृति में पाया जाता है, जबकि उक्त बातें मनुस्मृति में नहीं पाई जाती है। इसमें ''बौद्धमत का खण्डन किया गया है।''[162]

याज्ञवल्क्य स्मृति और मनुस्मृति के तुलनात्मक अध्ययन के विषय में बेबेर ने निम्न विचार प्रकट किये हैं –''जो विषय दोनों में पाये जाते हैं उनमें भी हम याज्ञवल्क्य में अधिक सूक्ष्मता और स्पष्टता पाते हैं और विशिष्ट उदाहरणों में जहाँ दोनों में ठोस अन्तर दिखाई पड़ता है, याज्ञवल्क्य का दृष्टिकोण स्पष्टतः बाद के समय का है।''

मनु ने व्यवहार के जितने प्रमाण गिनाये हैं उनकी अपेक्षा याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखित ताम्रपत्र अधिक हैं। मनु ने दिव्यों (प्रमाणों)– अग्नि और जल का वर्णन किया है, जबकि याज्ञवल्क्य ने पांच दिव्यों (प्रमाणों) का वर्णन किया है।

दार्शनिक विषयों के विवेचन में याज्ञवल्क्य और मनुस्मृति में एकरूपता है, किन्तु भ्रूण विज्ञान याज्ञवल्क्य स्मृति में एक नवीनतम विषय है। जिसे कीथ ने किसी आयुर्वेदिक ग्रन्थ से लिया हुआ माना है। यद्यपि याज्ञवल्क्य स्मृति मनुस्मृति की अपेक्षा छोटी है क्योंकि याज्ञवल्क्य स्मृति में

लगभग 1010 श्लोक हैं जबकि मनुस्मृति में 2600 श्लोक हैं।

प्रो0 काणे ने स्पष्ट किया कि याज्ञवल्क्य स्मृति के लेखक के सामने मनुस्मृति रही होगी, क्योंकि कई स्थानों पर दोनों स्मृतियों की शब्दावली समान है। याज्ञवल्क्य स्मृति की भाषावली पाणिनि के नियमों का पालन करती है। परन्तु कहीं–कहीं इस भाषा में व्याकरण के नियमों के अपवाद भी पाये जाते हैं।

प्राचीन साहित्य से याज्ञवल्क्य स्मृति का सम्बन्ध

वेद, वेदांगों, आरण्यकों, उपनिषदों, पुराणों, इतिहास, माराशंसी के साथ–साथ याज्ञवल्क्य द्वारा प्रणीत ग्रन्थ वृहदारण्यक एवं योगशास्त्र का वर्णन याज्ञवल्क्य स्मृति में हैं। इस स्मृति के आचाराध्याय में पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र और अंगो सहित चारों वेद, चौदह विद्या के और धर्म का स्थान वर्णित है।

साथ ही जो पूर्ववर्ती साहित्य के प्रणेता स्वयं को छोड़कर 19 धर्मशास्त्रकारों के नाम मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, उशनस, अंगिरस, यम, आपस्तम्ब, संवर्त, कात्यायन, वृहस्पति, पराशर, व्यास, शंख, लिखित, दक्ष, गौतम, शातातप और वशिष्ठ का वर्णन

'' पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङमिश्रिताः।

वेदांः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।।

मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोऽङिराः।

यमापस्तम्बसंवर्ताः कात्यायनबृहस्पती।

पराशरव्यासशंखलिखिता दक्षगौतमौ।

शातातपो वसिष्ठश्च धर्मशास्त्रप्रयोजकाः।।''[163]

एवं अन्वीक्षिकी (आत्म–विद्या), योग क्षेमोपयोगी (दण्डनीति विद्या), कृषि वाणिज्य (वार्ता) आदि का वर्णन किया गया है।

''स्वरन्ध्रगोप्ताऽऽन्वीक्षिवयां दण्डनीत्यां तथैव च।

विनीतस्त्वथ वार्तायां त्रय्यां चैव नराधिपः।।''[164]

याज्ञवल्क्य ने सूत्रों एवं भाष्यों की ओर भी संकेत किया है, किन्तु कहीं भी किसी लेखक का नाम नहीं आया है। उन्होंने सम्भवतः पतंजलि के भाष्य की ओर संकेत किया है। याज्ञवल्क्य ने विष्णु धर्मशास्त्र की बहुत सी बातें मान ली हैं। इनकी स्मृति एवं कौटिलीय अर्थशास्त्र में पर्याप्त समानता दिखाई पड़ती है। इनकी स्मृति के बहुत से श्लोक मनु के कथन से समानता रखते हैं, किन्तु याज्ञवल्क्य मनु की बहुत बातें नहीं मानते और कई बातों एवं प्रसंगों में वे मनु से बहुत बाद के विचारक ठहरते हैं। याज्ञवल्क्य स्मृति में मनुस्मृति से निम्न बातों में भिन्नताएं पाई जाती हैं–

1. याज्ञवल्क्य ब्राह्मण को शूद्र कन्या से विवाह करने का आदेश नहीं करते हैं, किन्तु मनु करते हैं। **''यज्ञस्थ ऋत्विजे दैव आदायार्षस्तु गोद्धयम्। चतुर्दश प्रथमजः, पुनात्युत्तरजश्च षट्।।''**[165]
2. .याज्ञवल्क्य ने नियोग का वर्णन किया है और इसकी भर्त्सना नहीं की है, किन्तु मनु ने की है। **''अपुत्रां गुर्वनुज्ञातौ देवरः पुत्रकाम्यया। सपिण्डो वा सगोत्रो वा धृताभ्यक्त ऋताावियात्।। आ गर्भसंभवाद्गच्छेत्पतितस्त्वन्यथा भवेत्। अनेन विधिना जातः क्षेत्रजोऽस्य भवेत्सुतः।।''**[166]
3. .याज्ञवल्क्य ने 18 व्यवहार पदो के नाम नहीं लिए हैं किन्तु मनु ने 18 व्यवहार पदों की परिभाषा दी है।

''**स्मृत्याचारव्यपेतेन मार्गेणाऽऽधर्षितः परैः। आवेदयति चेद्राज्ञे व्यवहारपदं हि तत्।।**''[167]

4. याज्ञवल्क्य ने पुत्रविहीन पुरूष की विधवा पत्नी के दाय भाग के विषय में स्पष्ट लिखा है, किन्तु मनु ने विधवा को सर्वोपरि स्थान पर नहीं रखा है। ''**पितृमातृसुतभ्रातृश्वशुरमातुलैः। हीना न स्याद्विना भर्त्रा गर्हणीयाऽन्यथा भवेत्।।**''[168]
5. याज्ञवल्क्य ने जुए की भर्त्सना नहीं की है, किन्तु मनु ने की है। ''**स सम्यवपालितो दयाद्राज्ञे भागं यथाकृतम् ।जितमुद्ग्राहयेज्जेत्रे दद्यात्सत्यं वचः क्षमी।।** ''[169]

याज्ञवल्क्य ने मानगृह्यसूत्र से विनायक– शान्ति की बातें ले ली हैं, किन्तु विनायक की अन्य उपाधियाँ या नाम नहीं लिए हैं। जैसे– मित, सम्मित, शालकटेकर एवं कूष्माण्डराजपुत्र।

याज्ञवल्क्य स्मृति का शुक्ल यजुर्वेद एवं उसके साहित्य से गहरा सम्बन्ध है। इस स्मृति के बहुत से उद्धृत मन्त्र ऋग्वेद एवं वाजसनेयी संहिता में पाये जाते हैं। कात्यायन के श्राद्ध कल्प से भी इस स्मृति की कुछ बातें मिलती हैं।

याज्ञवल्क्य स्मृति के अतिरिक्त नाम वाली तीन अन्य स्मृतियाँ हैं–

1. वृद्धयाज्ञवक्ल्य
2. योग याज्ञवल्क्य
3. वृहद्याज्ञवल्क्य।

ये तीनों तुलनात्मक दृष्टि से याज्ञवल्क्य स्मृति से बहुत प्राचीन हैं और विद्धानों का विचार है कि ''याज्ञवल्क्य स्मृति का मुख्य भाग 700 ई0 से अपरिवर्तित चला आ रहा है।''[170]

याज्ञवल्क्य स्मृति का समय

याज्ञवल्क्य स्मृति के समय के विषय में बेबेर का मत है– ''इस रचना के लिए प्राचीनतम सीमा दूसरी शताब्दी ई0 के आस पास की मानी जाती है। क्योंकि इसमें मृदा के अर्थ में 'नाणक' शब्द का प्रयोग है जोकि कर्नेकि के सिक्कों से लिया गया है, जिसने 40 ई0 में शासन किया था। दूसरी ओर इस समय की निचली सीमा छठी या सातवीं शताब्दी रखी जा सकती है क्योंकि विलसन के अनुसार इस स्मृति के अंशों को भारत के अनुक भागों में शिलालेखों में उल्लिखित किया गया है।''[171]

याकोवी ने याज्ञवल्क्य स्मृति का समय बारह ग्रहों की संख्या के आधार पर चतुर्थ शताब्दी ई0 के बाद माना है। प्रो0 एस0सी0 विद्यार्णव के अनुसार ''याज्ञवल्क्य स्मृति की रचना का काल 150 और 200 ई0 के मध्य माना जाता है क्योंकि इसके प्रारम्भ में मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत इत्यादि स्मृतियों के नाम दिये गये हैं। इससे स्पष्ट है कि इन सब स्मृतियों को देखकर सबका सार लेकर याज्ञवल्क्य ने अपनी स्मृति बनायी है।''[172]

प्रो0 काणे ने याज्ञवल्क्य स्मृति के समय के विषय में जो निष्कर्ष निकाले है, उनके अनुसार इस स्मृति के समय की निचली सीमा नवीं शताब्दी के बाद की नहीं हो सकती है। इसके निम्न कारण हैं–

1. टीकाकार विश्वरूप नवीं शताब्दी के हैं।
2. विश्वरूप ने अपने पहले के कई भाष्यकारों का उल्लेख किया है, जिन्होंने याज्ञवल्क्य स्मृति पर टीकाएं लिखी हैं।
3. शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र के भाष्य में याज्ञवल्क्य स्मृति के तीसरे अध्याय के दो सौ छब्बीसवें श्लोक का निर्देश किया है।

अतः ''याज्ञवल्क्य स्मृति को हम ई0पू0 पहली शताब्दी तथा ईसा के बाद की तीसरी शताब्दी के बीच मान सकते हैं।''[173]

याज्ञवल्क्य स्मृति की श्लोक संख्या

याज्ञवल्क्य स्मृति की श्लोक संख्या के विषय में विश्वरूपाचार्य, विज्ञानेश्वर तथा अपरादित्य का एक मत नहीं हैं।

1. विश्वरूप के अनुसार याज्ञवल्क्य स्मृति में 1032 श्लोक हैं।
2. विज्ञानेश्वर के अनुसार याज्ञवल्क्य स्मृति में 1009 श्लोक हैं।तथा
3. अपरादित्य के अनुसार याज्ञवल्क्य स्मृति में 1006 श्लोक हैं।

याज्ञवल्क्य स्मृति की व्याख्याओं में अनुपलब्ध परन्तु कुछ मूल पुस्तकों में उपलब्ध– ''श्लोकानामपि विज्ञेयं सहस्त्रं चतुरन्तरम्'' – के आधार पर मूल श्लोकों की संख्या 1004 प्रतीत होती है। शलपाणि ने याज्ञवल्क्य स्मृति में 1010 श्लोक माने हैं।

व्याख्यात श्लोकों में विषमता के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी श्लोक हैं, जिनका संकेत केवल मूल पुस्तक में है।

उदाहरण– आचाराध्याय में उल्लिखित श्लोकों के अतिरिक्त कुछ श्लोक अधिक पाये जाते हैं। जैसे श्लोक संख्या 233 एवं 234 के मध्य एक अर्ध श्लोक है–

''**अपहता इति तिलान्विकीर्य च समन्ततः**'

इसी प्रकार 308 एवं 309 श्लोकों के मध्य में एक श्लोक है–

''**ग्रहाणामिदमातिथ्यं कुर्यात्संवत्सरादपि।**

आरोग्यबलसंपन्नो जीवेत्स शरदः शतम्''।।

व्यवहाराध्याय के अन्त में भी मूल पुस्तक में निम्नलिखित तीन श्लोक अधिक हैं–

1. राजभिर्दत्त–दण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः। निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा।।
2. एवमुद्धृत दण्डानां विशुद्धिः पापकर्मिणाम् स्व–धर्म–स्थापनादाजा प्रजाभ्यो धर्ममश्नुते।।
3. यत्र दण्ड विधिर्नोवतः सर्वेरव महात्मभिः। देशकालादि संचिन्त्य तत्र दण्डो विधीयते''।।

इसी प्रकार प्रायश्चित अध्याय के अन्त में भी कुछ श्लोक पाये जाते हैं –

1. विप्रेष्वपि विशेषेण धार्या वाजसनैयिकैः। इच्छद्भिः श्रेयसि फलमिह लोके परत्र च।।
2. यदवाप्तं मया देवादादित्याद्वै सनातनात्। तद्वै सर्वमिदम्प्रोक्तं श्रुति–स्मृत्यभिसम्मतम्।।
3. निः श्रेयसकरं नृणां शास्त्रं देवर्षि–सेवितम् ज्ञात्वा ये ह्यध्यवस्यन्ति ते न संयान्ति वै पुनः।।[174]
   (ये तीन श्लोक मिताक्षरा के 330 तथा 328 श्लोकों के मध्य पाये जाते हैं)
4. धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्ममर्थार्थी चार्यमाप्नुयात्। कामानवाप्नुयात्कामी प्रजार्थी चाप्नुयात् प्रजाम्।। (यह श्लोक मिताक्षरा के 330 तथा 331 के बीच में पाया जाता है)
5. निर्जित्य वादे देवान् वैऋषीन् सर्वानुपस्थितान्। गा बौधेनाहृतास्तस्मैं नमो ब्राह्मण–हेतवे।।
6. अध्याय–त्रय संक्षिप्त सर्वेषां बुद्धि–वर्धनम्। अनुष्टुच्छन्दसा ह्येतत् याज्ञवल्क्येन भाषितम्।।

7. सर्व–पाप–हरं पुण्यं सुप्रसन्नं समंजसम्। श्लोकानामपि विज्ञेयं सहस्त्रं चुतुरूत्तरम्।।
8. आदित्यस्य प्रसादेन प्राप्तवान् यो यजुर्गणम्। प्रणमेद्याज्ञवल्क्यं तं पिप्पलादगुरोरलम्।।[175]

इन श्लोकों में से कुछ श्लोक तो यद्यपि स्पष्टतः अनावश्यक प्रतीत होते हैं तथापि मूल पुस्तक में उपलब्ध होने के कारण उनका यहाँ उल्लेख किया गया है।

कुछ विद्वानों का मानना है कि याज्ञवल्क्यस्मृति की रचना मिथिला में हुई थीं और याज्ञवल्क्य ने मुनियों को यह सुनाया था। इस स्मृति में 1009 श्लोक हैं जो तीन अध्याय में बॅटे हैं।–

1. आचाराध्याय– 368श्लोक,
2. व्यवहाराध्याय– 307श्लोक,
3. प्रायश्चित्ताध्याय–334श्लोक।

इस प्रकार संक्षिप्त में स्वशास्त्रीय सभी विषयों को प्रकरणबद्ध रूप से अत्यन्त स्पष्ट रूप में निबद्ध करने के कारण इस स्मृति की उपयोगिता अधिक है।''[176]

याज्ञवल्क्य स्मृति में वर्णित विषय

याज्ञवल्क्य स्मृति का आरम्भ मुनियों के प्रश्न से होता है। योगीश्वर याज्ञवल्क्य मिथिला में निवास कर रहे थे, ऋषि–मुनियों ने उनकी पूजा–अर्चना की और प्रार्थना की–''आप हम लोगों को वर्णो, आश्रमों तथा अनुलोम, प्रतिलोम, संकर जातियों का धर्म पूरी तरह समझाइये।

''योगीश्वरं याज्ञवल्क्यं संपूज्य मुनयो बुवन्।

वर्णाश्रमेतराणां नो ब्रुहि धर्मानशेषतः।।''[177]

तब याज्ञवल्क्य ने उस देश में किये जाने वाले धर्म का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि जिस देश में काले मृग स्वच्छन्द विचरण करते हैं, उस देश के धर्म का वर्णन करता हूं।

''यस्मिन् देशे मृगः

कृष्णस्तमिस्मन्धर्मान्निबोधत।।''[178]

इस उपक्रम के बाद याज्ञवल्क्य स्मृति आरम्भ होती है और बीच–बीच में पृच्छालु मुनिगण शंका करते हैं, जिनका समाधान स्थान–स्थान पर याज्ञवल्क्य ने किया है। यह स्मृति लगभग समान विस्तार के लिए अध्यायों में विभक्त हैं–

1.आचाराध्याय

2.व्यवहाराध्याय

3.प्रायश्चित्त अध्याय''[179]

इस प्रकार याज्ञवल्क्य ने जानबूझकर अथवा अनजाने में हुए पापों से व्यक्ति को छुटकारा दिलाने के लिए अनेक प्रकार के उपाय प्रायश्चित्त अध्याय में बताये हैं। याज्ञवल्क्य ने मनुष्य की मनोवृत्तियों का गम्भीर अध्ययन कर समाज की व्यवस्था को मुख्य मानकर मनुष्य की अपराधी प्रवृत्तियों को दूर करने का बड़ा कार्य किया है। प्रायश्चित को अपराध–निरोधक मन्त्र माना है। प्रायश्चित के पश्चात् मनुष्य के मन में पुनः कभी भी अपराधी वृत्तियों का उदय नहीं होता है। प्रायश्चित्त करने के अनन्तर मनुष्य का मन निर्मल और निष्पाप हो जाता है।

याज्ञवल्क्यस्मृति के व्याख्याकार

1. विश्वरूप (850ई0)– ये याज्ञवल्क्य–स्मृति की सर्वप्राचीन उपलब्ध व्याख्या बालक्रीडा के रचयिता है। मिताक्षराकार विज्ञानेश्वर (1100ई0) ने इनका आदर के साथ स्मरण किया है। यह व्याख्या त्रिवेन्द्रम से प्रकाशित हुई थी। यह बहुत ही विस्तृत

व्याख्या त्रिवेन्द्रम से प्रकाशित हुई थी। यह बहुत ही विस्तृत व्याख्या है। मैथिल पण्डित श्रीकर मिश्र(1050ई0) के श्रीकरनिबन्ध ग्रन्थ के समान'विश्वरूपनिबन्ध' के भी उद्धरण चण्डेश्वर,वाचस्पति मिश्र आदि देते हैं जो पद्यबद्ध हैं तदनपुसार विश्वरूपनिबन्ध पद्यबद्ध धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ था। पुरूषोत्तमदेव(1175ई0) की भाषावृत्ति पर 'पंजिका' व्याख्या लिखने वाले मैथिल विश्वरूप उपाध्याय (1250 ई0) उपर्युक्त विश्वरूप से भिन्न थे। इन में विश्वरूपनिबन्ध के रचयिता कौन विश्वरूप थे,यह अनुसन्धानसापेक्ष है।

2. विज्ञानेश्वर (1100ई0)– इनकी ऋजुमितजाक्षरा व्याख्या (जिसे संक्षेप में मिताक्षरा कहा जाता है), नामनुरूप स्पष्ट सरल एवं सारगर्भित है। विषय को स्पष्ट करने के लिए इस में विविध स्मृति, पुराण आदि के उद्धरण दिये गये है, जिससे विषय का सांगोपांग निरूपण इसकी उपादेयता अधिक है। विज्ञानेश्वर ने[2]ये अपनी मिताक्षरा में धारेश्वर (भोजराज) की चर्चा प्रस्तुत करते हैं । नागेश भट्ट के शिष्य वैद्यनाथपायगुण्डे के पुत्र बालम्भट्ट ने मिताक्षरा की 'बालम्भट्टी' व्याख्या लिखी(1) जो एक मान्य ग्रन्थ है। तदनुसार ये भरद्वाज गोत्रीय भट्ट पदम्नाभ के पुत्र एवं उत्तमात्म यति के शिष्य थे। स्वयं(2) परमहंस–परिव्राजकाचार्य थे। ये चालुक्य वंशीय विक्रमादित्य(1076–1114ई0)के आश्रित थे, जिनके राजकवि विल्हण ने विक्रमांक देवचरित महाकाव्य की रचना की थी। इन्हीं के आश्रय में आचार्य वररूचि ने 'लिंगविशेषविधि' नामक कोशग्रन्थ की रचना की थी तथा'पत्रकौमुदी' लिखी थी।

3. अपरार्क(1150ई0)–इनकी व्याख्या अपरार्क निबन्ध नाम से जानी जाती है जो आनन्दाश्रम ग्रन्थावली,पूना से प्रकाशित है। यह अतिविस्तृत व्याख्या है।

4. शूलपाणि (1175ई0)– इनकी व्याख्या का नाम दीपमालिका है। ये बंगप्रान्तीय थे। इनकी व्याख्या अत्यन्त संक्षिप्त और प्रामाणिक है। इन्होने विश्वरूप एवं विज्ञानेश्वर का उल्लेख किया है। रूद्रधर एवं मित्र मिश्र ने इनके मतों का उल्लेख किया है।

5. मित्र मिश्र–(1750ई0)– इनकी व्याख्या का नाम वीरमित्रोदय है। इन्होंने अपने आनन्दवृन्दावनचम्पू में रचना काल शाके 1690 का उल्लेख किया है जो 1778 ई0 होता है। यह व्याख्या बहुत ही विस्तृत है। यथार्थतः मित्रमिश्र के आदेश से मैथिल पण्डित सदानन्द ने ही वीरमित्रोदय की रचना की थी, जिसका उल्लेख इसी ग्रन्थ में पाया जाता है।

6. डॉ0 उमेश चन्द्र पाण्डेन ने याज्ञवल्क्यस्मृति की 'प्रकाश' हिन्दी व्याख्या की रचना की थी जो सं0 2024 में वाराणसी से मुद्रित हुई।

ऋतुकालादिनियमन रूप काम[180] ,जीवननिर्वाहोपाय रूप अर्थ (1–19) एवं आत्मदर्शन रूप मोक्ष (1–8) का निरूपण स्मृति ग्रन्थों में देखा जाता है।

ये अपनी मिताक्षरा में धारेश्वर (भोजराज) की चर्चा प्रस्तुत करते हैं (पृ0–323)। नागेश भट्ट के शिष्य वैद्यनाथपायगुण्डे के पुत्र बालम्भट्ट ने मिताक्षरा की 'बालम्भट्टी' व्याख्या लिखी जो एक मान्य ग्रन्थ है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. 1.संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पृ.22 ।
2. तैत्तिरीय संहिता–भाष्य की भूमिका
3. उणादि सूत्र,4.129
4. निरूक्त
5. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पृ.22
6. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पृ.24
7. मनुस्मृति 2–6
8. .मनु0 2–7
9. महाभाष्य, आह्निक 1
10. .मनु0 2–166
11. मनु0 2–168
12. मनु0 1–21)
13. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पृ.22
14. विस्तृत विवरण एवं सन्दर्भों के लिए देखो, लेखक–कृत– 'वेदानां महत्वम् शीर्षक निबन्ध। प्रौढ़ रचनानुवादकौमुदी पृष्ठ 297–300 तथा संस्कृत– निबन्ध–शतकम् भाग 3 में उपर्युक्त निबन्ध ।
15. अध्याय 30, मंत्र 5–22
16. जु0 30–5
17. यजु0 3–50
18. यजु0 9–23)
19. यजु0 9–40)
20. अथर्व. 6–87–1
21. अथर्व0 3–4–2
22. अथर्व0 7–12–1
23. ऋग्0 10– 75–5
24. ऋग्वेद 7–83–7: 7–418
25. .ऋग्वेद 3–37–9
26. ऋग्0 9–61–2।
27. यजु0 24–20 से 40।
28. यजु0 30–5 से 22।
29. अथर्व0 9–3–16)
30. ऋग0 3–61–4)
31. ऋग0 1–123–10)
32. ईश0 11
33. मुण्डक 1–2–7
34. Winternitz-H.I.L,पृ.268
35. Winternitz-H.I.L,पृ.266–267
36. मुण्डक, उप0 1–1–5
37. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पृ.85
38. पा0 शिक्षा, श्लोक 41, 42
39. सायण, ऋग्वेदभाष्य0, पृष्ठ 49
40. विस्तृत विवरण के लिए – लेखक कृत 'वेद और शिक्षा–ग्रन्थ' लेख। आर्यमित्र का 'वेदांग प्रकाश' अंक ,1968, पृष्ठ 1–8।
41. आर्यमित्र का 'वेदांग प्रकाश' अंक 1968, सम्पादकीय, पृष्ठ ज–झ।
42. तैत्तरीय उपनिषद, 1–2)
43. विवरण के लिए देखो– लेखक कृत 'संस्कृत व्याकरण' 1967, पृष्ठ 5–7।
44. पाणिनीय शिक्षा, 31–33
45. यजु0 19–77

46. महाभाष्य आ0–1

47. विस्तृत–विवरण के लिए–लेखक कृत संस्कृत व्याकरण की भूमिका, पृष्ठ 14–23

48. A.A. Macdonell- India's Past ,पृष्ठ 136

49. Winternitz – H.I.L. भाग 1 ,पृष्ठ 288

50. वेदांग–ज्योतिष ,श्लोक 3

51. विष्णुमित्र–कृत ऋक–प्रातिशाख्य की वृत्ति, पृष्ठ 13।

52. संस्कृत सा0 का इतिहास, भा 1 (हिन्दी) पृष्ठ 245।

53. धर्मशास्त्र साहित्य में अपराध एवं दण्ड विधान,मनु तथा याज्ञवल्क्य के विशेष परिप्रेक्ष्य में, डॉ,विभा,संस्कृतग्रन्थागार,46 संस्कृत नगर,से.14,रोहिणी दिल्ली–85,पृ.9

54. धर्मशास्त्रीय विषयों का परिशीलन,पृ.7)

55. अधतः सामयाचारिकान्धर्मान्व्याख्यास्यामः, आप.ध. सू. 101.1

56. धर्मशास्त्रीय विषयों का परिशीलन,पृ.8

57. धर्मशास्त्रीय विषयों का परिशीलन,पृ.9

58. धर्मशास्त्रीय विषयों का परिशीलन,पृ.9

59. वायु पुराण, 601142

60. धर्मशास्त्रीय विषयों का परिशीलन,पृ.3

61. धर्मद्रु , पृ. 016 में (ऋग्वे प्रातिशाख्य से विष्णुमित्र का वचन)उद्धृत

62. धर्मशास्त्रीय विषयों का परिशीलन,पृ.4

63. मनु. 2/10

64. धर्मशास्त्रीय विषयों का परिशीलन,पृ.5

65. हिस्ट्रीऑफ, ऐंश्येन्ट संस्कृत लिटरेचर पृ. 206 –07

66. हिस्ट्रीऑफ, ऐश्येन्ट संस्कृत लिटरेचर, पृ. 208

67. धर्मशास्त्रीय विषयों का परिशीलन,पृ.6

68. याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ. ऊषा गुप्ता, ईस्टर्न बुक लिंकर्स,5825,न्यू चन्द्रावल,जवाहरनगर,दिल्ली–7, पृ.1

69. श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वे स्मृतिः। मनुस्मृति, 2/10

70. याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ. ऊषा गुप्ता, ईस्टर्न बुक लिंकर्स,5825,न्यू चन्द्रावल,जवाहरनगर,दिल्ली–7,पृ.1

71. याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ. ऊषा गुप्ता, ईस्टर्न बुक लिंकर्स,5825,न्यू चन्द्रावल,जवाहरनगर,दिल्ली–7,पृ.3)

72. याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ. ऊषा गुप्ता, ईस्टर्न बुक लिंकर्स,5825,न्यू चन्द्रावल,जवाहरनगर,दिल्ली–7,पृ.4

73. याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ. ऊषा गुप्ता, ईस्टर्न बुक लिंकर्स,5825,न्यू चन्द्रावल,जवाहरनगर,दिल्ली–7,पृ.4

74. वीरमित्रोदय, प्रयोगपारिजात, परिभाषाप्रकरण, पृ0सं0 18।

75. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/4–5

76. याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ. ऊषा गुप्ता, ईस्टर्न बुक लिंकर्स,5825,न्यू चन्द्रावल,जवाहरनगर,दिल्ली–7, पृ.1

77. अष्टादशपुराणेशु यानि वावत्रवानिपुत्रक, तान्यालोच्य महावाहोतथा स्मृत्वन्तरेषु च भन्वाथिस्मृतयो साश्य वाहनिशंत्परिकीर्तिताः, तातां वाक्यानि

क्रमशाः समालोच्य बधोमिते, भविष्य पुराणम्।

78. प्राचीन भारत में राज्य एवं न्यायपालिका, डॉ0 हरिहर नाथ त्रिपाठी दिल्ली, 1965, पृष्ठ100

79. रघुवंश 212 – श्रुतेरिवार्द्यन, स्मृतिरन्वगच्छत्।

80. स्मृति चन्द्रिका।

81. स्मृतिचन्द्रिका।

82. याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ. ऊषा गुप्ता, ईस्टर्न बुक लिंकर्स,5825,न्यू चन्द्रावल,जवाहरनगर,दिल्ली–7, पृ.7

83. यास्क, निरूक्त, 3/1।

84. धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, पृ0सं0 14।

85. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/4–5

86. याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ. ऊषा गुप्ता, ईस्टर्न बुक लिंकर्स,5825,न्यू चन्द्रावल,जवाहरनगर,दिल्ली–7, पृ.9।

87. याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ. ऊषा गुप्ता, ईस्टर्न बुक लिंकर्स,5825,न्यू चन्द्रावल,जवाहरनगर,दिल्ली–7, पृ.1

88. याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ. ऊषा गुप्ता, ईस्टर्न बुक लिंकर्स,5825,न्यू चन्द्रावल,जवाहरनगर,दिल्ली–7, पृ.9

89. याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ. ऊषा गुप्ता, ईस्टर्न बुक लिंकर्स,5825,न्यू चन्द्रावल,जवाहरनगर,दिल्ली–7, पृ.9

90. याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ. ऊषा गुप्ता, ईस्टर्न बुक लिंकर्स,5825,न्यू चन्द्रावल,जवाहरनगर,दिल्ली–7, पृ.11

91. दक्षस्मृति, 3/17–18

92. याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ. ऊषा गुप्ता, ईस्टर्न बुक लिंकर्स,5825,न्यू चन्द्रावल,जवाहरनगर,दिल्ली–7, पृ.13

93. याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ. ऊषा गुप्ता, ईस्टर्न बुक लिंकर्स,5825,न्यू चन्द्रावल,जवाहरनगर,दिल्ली–7, पृ.14

94. उद्धृत , प्राचीन भारत में राज्य एवं न्यायपालिका, 1965, पृष्ठ 106.

95. मनुस्मृति–2/224)

96. याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ. ऊषा गुप्ता, ईस्टर्न बुक लिंकर्स,5825,न्यू चन्द्रावल,जवाहरनगर,दिल्ली–7, पृ.2–3

97. मनुस्मृति (षष्ठ अध्याय)

98. मनुस्मृति की ऐतिहासिकता) कानपुर 1990, पृष्ठ 2

99. याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ. ऊषा गुप्ता, ईस्टर्न बुक लिंकर्स,5825, न्यू चन्द्रावल,जवाहरनगर,दिल्ली–7, पृ.3

100. याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ. ऊषा गुप्ता, ईस्टर्न बुक लिंकर्स,5825,न्यू चन्द्रावल, जवाहरनगर, दिल्ली–7, पृ.3–4

101. याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ. ऊषा गुप्ता, ईस्टर्न बुक

लिंकर्स,5825,न्यू चन्द्रावल, जवाहरनगर, दिल्ली–7, पृ.4

102. याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ. ऊषा गुप्ता, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, 5825, न्यू चन्द्रावल, जवाहरनगर, दिल्ली–7, पृ.5
103. याज्ञवल्क्य स्मृतिः (व्यवहाराध्याये दाय–विभाग प्रकरणम्), प्रकाशन साहित्य भण्डार, सम्पादक डॉ0 कैलाश नाथ द्विवेदी मेरठ, 1966 ,भूमिका, पृष्ठ 1–11।
104. याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ. ऊषा गुप्ता, ईस्टर्न बुक लिंकर्स,5825,न्यू चन्द्रावल, जवाहरनगर, दिल्ली–7, पृ.6–7
105. ऋग्वेद, 8/30/3
106. ऋग्वेद, 1/114/2
107. धर्मशास्त्रीय विषयों का परिशीलन,पृ.34
108. .धर्मशास्त्रीय विषयों का परिशीलन,पृ.34
109. तै0 सं0, 2/2/10/2
110. ताण्ड0– 23/16/17
111. प्रजापतये मनवे स्वाहा। तै0 ब्रा0, 3/2/8/1,4/1/9/1
112. आचार्य राजेन्द्र प्रसाद, धर्मद्रुम, पृ0 42
113. मत्स्य0, 1/29–35
114. मौ0 शफी, तफसीर, पृ. 201
115. डॉ0 सुरेन्द्र कुमार, वैदिक आख्यानों का वैदिक स्वरूप, पृ0 214
116. मनुस्मृति में राजतंत्र, डॉ0 कौशल किशोर मिश्र, पृ0 42
117. श्रीराम शर्मा आचार्य, बीस स्मृतियां, प्रथम भाग, पृ0 18
118. J.K. Dave, Manu Samriti with nine commentaries, Vol. 1 P.-93
119. 3 निरूक्त, 3/3
120. रघुवंश, 1/11
121. कामसूत्र, 1/1/6
122. मृच्छकटिक, 9/39
123. डॉ0 सुरेन्द्र कुमार, मनुस्मृति और वर्णव्यवस्था, उद्धृत परोपकारी मासिक पत्रिका जनवरी, 2002
124. पी0वी0काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम खण्ड, पृ0 46,
125. Petric, Flieclesa Lendco, 1896, Plates III, IV and V P. 4,
126. Bed Eldern , some Angects of with and Religion , 1922
127. Sun , W.S. Indian Infloences in old Baliense art India Society, London-1935, P.7उद्धृत डॉ0 कौशल किशोर मिश्र मनुस्मृति में राजतन्त्र, पृ0 59
128. मनु के बारे में जानकारी, एक लघु पुस्तिका उद्धृत परोपकारी मासिक पत्रिका, अक्टूबर 2001
129. ऋग्वेद, 8/30/3 एवं यास्क ने निरूक्त शास्त्र प्रणेता के रूप में मनु का उल्लेख किया है। निरूक्त, 3/3
130. पी0वी0काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम खण्ड, पृ0 46
131. पी0वी0काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम खण्ड, पृ0 46
132. पी0वी0काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम खण्ड, पृ0 47
133. मनु0 3/54

134. श्रीधर भास्कर वर्णेकर, संस्कृत वाड्मय कोश, द्वितीय खण्ड, पृ0 250

135. पी0वीकाणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम खण्ड, पृ0 46

136. सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट सीरीज, भूमिका, पृ0 97–98

137. हिन्दू राजतंत्र, मनु और याज्ञवल्क्य, पृ0 32 तथा ब्र0 वाचस्पति गैरोला, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ0 743

138. पं0 हरगोविन्दशास्त्री, मनुस्मृति, भूमिका, पृ0 10

139. K.P.Jayswal, Manu and Yajanvalkaya, Column, 1930 P.27

140. Elluicdom Listory of India, P. 11-12, उद्धृत डॉ0 कौशल किशोर मिश्र, मनुस्मृति में राजतन्त्र, पृ0 57

141. डॉ0 उमेशचन्द्र पाण्डेय, आपस्तम्ब धर्मसूत्र, भूमिका

142. वृहदारण्यकोपनिषद्, 2/4/1।

143. शतपथब्राह्मण, 14/9/4/33 ख. भागवतपुराण, 10/6/61–74 ग. महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय 312।

144. याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन,ईस्टर्नबुक लिंकर्स, 5825 ,न्यूचन्द्रावल, जवाहरनगर, दिल्ली–7, संस्करण, 1998 ,पृ.15

145. वृहदारण्यकोपनिषद्, 3/1।

146. याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन, ईस्टर्नबुक लिंकर्स, 5825 ,न्यूचन्द्रावल, जवाहरनगर, दिल्ली–7, संस्करण, 1998,पृ. 15

147. जीवन्मुक्तिविवेक, पृ0सं0 157 (आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थमाला)

148. याज्ञवल्क्य स्मृति, भूमिका, पृ0सं0 13।

149. शतपथ –14 ।9 ।4 ।33

150. याज्ञवल्क्यस्मृति.,हिन्दी व्याख्याकार,पं दुर्गाधर झा ,सं,डॉ. शशि नाथ झा,भारतीय विद्या प्रकाशन,पो.बा.नं.1108 कचौड़ी गली, वाराणसी, 221001, संस्करण, 2002,पृ.13

151. याज्ञवल्क्य स्मृति, 3/110।

152. शतपथब्राह्मण, 11/6/3।

153. मैकडानल एवं कीथ, वैदिक इण्डेक्स, भाग–2, पृ0सं0 189।

154. याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन,ईस्टर्न बुक लिंकर्स, 5825, न्यूचन्द्रावल, जवाहरनगर, दिल्ली–7, संस्करण, 1998,पृ.17

155. ए क्लासिक डिक्शनरी ऑफ हिन्दूमाइथोलोजी, पृ0सं0 37।

156. याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन, ईस्टर्नबुक लिंकर्स, 5825, न्यूचन्द्रावल, जवाहरनगर, दिल्ली–7, संस्करण,1998,पृ. 17

157. हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, भाग–1, पृष्ठ 246, टिप्पणी।

158. याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन, ईस्टर्नबुक लिंकर्स, 5825, न्यूचन्द्रावल, जवाहरनगर, दिल्ली–7, संस्करण, 1998,पृ. 18

159. याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन,ईस्टर्नबुक लिंकर्स, 5825, न्यूचन्द्रावल, जवाहरनगर, दिल्ली–7, संस्करण,1998,पृ.17

160. वृहदारण्यकोपनिषद् 6/3/15।

161. शतपथब्राह्मण, 14/9/4/29।

162. याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन,ईस्टर्नबुक लिंकर्स, 5825, न्यूचन्द्रावल, जवाहरनगर, दिल्ली–7, संस्करण,1998,पृ.18

163. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/3–5

164. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/311

165. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/59

166. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/68–69

167. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/5

168. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/86

169. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/200

170. उमेश चन्द्र पाण्डेय;, भारतीय साहित्य, पृ0 278।

171. प्रो0 काणे; धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ0 5

172. 'As to the date of Yajnavalkya's Law-book, it has been conjecturally placed in the middle of the first century of our era. The period of its first compilation cannot, of course, be fixed with certainly, but internal evidence clearly indicates that the present reaction is much more recent than that of Manu's Law-book'- S.C. Vidyarnava, Yajnavalkya's Smriti, XVII.–परमात्माशरण, प्राचीन भारत में राजनैतिक विचार एवं संस्थायें, पृ0 सं0 203–204।

173. प्रो0 काणे; धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ0 53।

174. याज्ञवल्क्य स्मृति ,व्याख्याकार–उमेशचन्द्र पाण्डेय) भूमिका, पृ0 15 से उद्धृत।

175. याज्ञवल्क्य स्मृति, भूमिका, पृ0 16 से उद्धृत।

176. याज्ञवल्क्यस्मृति.भारतीय विद्या प्रकाशन ,पो.बा.नं.1108,कचौड़ी गली,वाराणसी,221001,संस्करण,2002,पृ. 12।

177. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/1।

178. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/2 का उत्तरार्द्ध।।

179. याज्ञवल्क्यस्मृतिकासमीक्षात्मकअध्ययन,ईस्टर्नबुकलिंकर्स,5825,न्यूचन्द्रावल,जवाहरनगर,दिल्ली–7,संस्करण,1998,पृ.27

180. याज्ञ01–77।

Copyright © 2017, Dr. Mamta. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.